राजा प्रियङ्कर

सम्पादक

मुनि महाराज आनन्दविजयजी गणी

आर्थिक सहायक

जावाल (मारवाड़) निवासी स्वर्गीय धर्मात्मा

सेठ कपुरचन्दजी

के स्मरणार्थ

धर्म परायण दानवीर श्रीमान्

सेठ भमूतमलजी मगनलालजी

प्रथमावृत्ति १००० [सन् १९२५] मूल्य ॥=)

प्रकाशक
बृहद्-वड़ गच्छीय श्रीपूज्य
जैनाचार्य श्रीचन्द्रसिंह सूरि शिष्य
पण्डित काशीनाथ जैन
२०१ हरिसन रोड.
कलकत्ता।

कलकत्ता
२०१, हरिसन रोडके नरसिंह प्रेसमें
पण्डित काशीनाथ जैन
द्वारा मुद्रित

भूमिका ।

संस्कृतमें श्री जिनसूर मुनिका लिखा हुआ एक प्रियंकर-चरित्र मौजूद है । यह चरित्र उसीके अधारपर लिखा गया है । यह इतना मनोरंजक है, कि शायद ही इसे पढ़ना आरम्भ करने पर पूरा किये विना कोई छोड़ सके । इस चरित्रमें प्रधानतया श्रीभद्रबाहुस्वामी श्रुतकेवली (चौदहपूर्वी) कृत "श्रीउपसर्गहर स्तोत्र" की महिमा बतलायी गयी है । चरित्रनायक राजा प्रियंकरने इसी स्तोत्रके प्रतापसे अनेक प्रकारकी सुख-सम्पत्तियाँ प्राप्त की थीं । उसके अनेक विघ्न टल गये थे और मनुष्य जन्म पाकर भी वह धरणेन्द्रकी प्रसन्नता हो जानेसे पाताललोक देखनेको समर्थ हुआ था ।

प्रियंकरने चार स्त्रियोंसे विवाह किया था । उसके एक ही पुत्र था । वह पूरा धर्मात्मा था । बनियेका बेटा होनेपर भी उसने राज्य पाया था और न्यायके साथ प्रजाका पालन करता था । मरनेपर उसने सौधर्म नामक देवलोक लाभ किया ।

प्रसंगानुसार इस चरित्रमें स्वप्न-शास्त्र, शकुन-शास्त्र, और वास्तु-शास्त्रकी भी बातें आ गयी हैं । साथ-ही-साथ और भी बहुत उपयोगी विषयोंका समावेश किया गया है, जिनका पाठ करना जैन-बन्धुओंके लिये अत्यन्त हितकारक सिद्ध हुए विना न रहेगा ।

यहाँपर हम अपने परममाननीय विद्वद्वर्य्य चारित्र-चूड़ामणि मुनिराज श्री आनन्दविजयजीके पूर्ण अनुगृहीत हैं। जिन्होंने इस पुस्तकको सम्पादन करनेकी कृपा की है। आशा है, इसीतरह हमपर दया रखते हुए अन्यान्य पुस्तकोंको भी सम्पादित कर देनेकी कृपा करेंगे।

इस पुस्तकका मूल्य हम अपने नियमानुसार १) रुपैया रखते; पर इसके प्रकाशनकेलिये श्रीमान सेठजी मनूतनलजी नगनमलजीने अपने स्वर्गीय पिताजी कपूरचन्दजीके स्मरणार्थ आर्थिक सहायता देकर समाजके लाभार्थ इसका मूल्य केवल ॥=) रखवाया है, एतदर्थ आपका शुभनाम इसी पुस्तकके मुखपृष्ठपर अंकित किया गया है। आशा है, सेठसाहब इसीतरह अपने न्यायोपार्जित लक्ष्मीका सद्व्ययकर पुण्य और यशके भागी बनेंगे।

अन्यान्य साहित्यप्रेमी सज्जनवर्ग भी सेठजीके इस शुभकार्यका अनुसरण करतेहुए हिन्दी जैनसाहित्यके विकाशमें वृद्धि करेंगे।

शेषमें हमारे पाठकोंसे निवेदन है, कि हमारी यह पन्दरहवीं पुस्तक आपके करकमलोंमें उपस्थित हो रही है। आशा है, अन्यान्य पुस्तकोंकी भाँति यही भी प्रिय प्रतीत होगी।

ता० १५—८—१९२५
२०१ हरिसन रोड,
कलकत्ता।

आपका
काशीनाथ जैन।

मुनि महाराज श्री आनन्द विजयजी

राजा प्रियङ्कर

पहला परिच्छेद ।

हार की चोरी ।

मगध देशमें अशोकपुर नामका एक नगर था। उस नगरमें बड़े-बड़े अमीरोंके दुमंजिले, तिनमंजिले मकान थे। वह सब प्रकारकी धन-संपत्तियोंका ढेर था। लोग खाने-पीनेसे सदा सुखी थे। घी-दूधकी नदियाँ ही बहती रहती थीं वहाँके मन्दिरोंमें श्रीआदिनाथ भगवान्‌की मूर्त्ति स्थापित थी। राजमहलकी शोभाही कुछ अनोखी थी। कोई कहीं दुःखी नहीं दिखलाई देता था।

उसी नगरमें अशोकचन्द्र नामके राजा रहते थे। वे बड़ेही तेजस्वी, प्रतापी, शरणागतवत्सल, दुर्जनोंके दमनकर्त्ता, शत्रुओंका नाश करनेवाले, प्रजाके पालक, दानी, भोगी, विवेकी नीति-

निपुण, प्रतिज्ञापालक और किये हुए उपकारको कभी नहीं भूलनेवाले थे उन्होंने पृथ्वी-मण्डलके अनेक देशों पर अपना राज्य फैला दिया था।

उनके विनय, विवेक और शील आदि अनेक गुणों से युक्त अशोकमाला और पुष्पमाला नमकी दो रानियाँ थीं। कहा है,—

"रम्या सुरूपा सुभगा विनीता, प्रेमाभिमुख्या सरस-स्वभावा।
सदा सदाचार-विचार-दक्षा, सम्प्राप्यते पुण्यवशेन पत्नी ॥"

"रम्या, सुन्दरी, सुभगा, विनय-सम्पन्ना, प्रेमपूर्ण हृद-वाली, सरल-स्वभाव और सदैव सदाचारके विचारमें रहने वाली पत्नी बड़े पुण्योंसे ही प्राप्त होती है।"

राजाके तीन पुत्र थे, जिनके नाम क्रमसे अरिशूर, रणशूर और दानशूर थे। वे भी अनेक गुणों से अलंकृत, सकल कला-ओं से संयुक्त और देव, गुरु, माता-पिता तथा स्वजनों की भक्ति करने वाले थे। कहाभी है, कि

"कोऽर्थः पुत्रेण जातेन, यो न विद्वान् न भक्तिमान् ?
किं तया क्रियते धेन्वा, या न सूते न दुग्धदा ?"

अर्थात्—"ऐसा पुत्र होनेसे ही क्या हुआ, जो न विद्वा-न हुआ और न भक्तिमान्। उस गौसे क्या मतलब जो न बच्चा और न दूध देती है।"

चित्तानुवर्त्तिनी भार्या, पुत्रा विनयतत्पराः।
वैरिमुक्तं च यद्राज्यं, सफलं तस्य जीवितम्।"

अर्थात्— "मनके अनुकूल चलनेवाली स्त्री, विनयी पुत्र, और वैरीसे हीन राज्य जिसके पास है, उसका जीवन सफल है ;

राजा अशोकचन्द्रको हाथी-घोड़े आदि सभी चीज़ें थीं। उनके मन्त्री बहुतही चतुर और बुद्धिमान थे। लोग कहते हैं, कि जिस राज्यमें वापी, कूप, तड़ाग, दुर्ग, मन्दिर, हर जातिके लोग, सुन्दर स्त्रियाँ, गुणी, वक्ता, वैद्य, ब्राह्मण, विद्वान्, वेश्याएँ वणिक्, नदी, विद्या, विवेक, वित्त और विनय-सहित वीरजन, मुनि, कारीगर, वस्त्र और हाथी-घोड़े, आदि होते हैं, वही शोभायमान होता है।

एक दिन राजाने अपने पुत्र अरिशूरके विवाहके लिये नया महल तैयार करनेके लिये वास्तुशास्त्रमें निपुण कारीगरोंको बुलवा भेजा। शास्त्रमें कहा गया है कि वैशाख, श्रावण, अग-हन, फाल्गुन तथा पौष मासमें मकान बनवाना चाहिये, और किसी महीनेमें नहीं। घरकी पूर्व दिशामें लक्ष्मीका भण्डार, अग्नि कोणमें रसोई घर, दक्षिण दिशामें सोनेका घर और नैऋत्य कोणमें शास्त्रागार बनवाना चाहिए। पश्चिम दिशामें भोजन करनेका स्थान, वायव्य कोणमें धान्य रखनेका स्थान, उत्तर दिशामें जलका स्थान तथा ईशान कोणमें देवताका स्थान बनवाना चाहिये।

राजाके कारीगरोंने इसी मतके अनुसार नया महल तैयार कर दिया। इसके बाद चतुर चितेरोंने उस मकानको तरह-तरहके चित्रोंसे चित्रित कर दिया। साथही दूल्हनके

लिये चतुर सुनार अनेक-रत्नों और सोनेके गहने गढ़ने लगे।

इसी समय देवतासे वरदान पाये हुए कितनेही स्वर्णकार पाटलीपुत्र नगरसे वहाँ आये और राजाके पास आकर कहने लगे,—"हे महाराज! हमारे गढ़े हुए गहने जो कोई पहनता है, वह यदि राज्यके योग्य होता है तो राज्य पाता है और नहीं तो चाहे जो कोई हो वह महत्वको प्राप्त होता है। अधिक क्या कहा जाये? यदि वह राजा हो तो सब राजाओंका सिरताज हो जाता है।"

उनकी यह बात सुन राजाने उनसे एक हार तैयार करनेका हुक्म दिया और अपने भण्डारीको आज्ञादी कि सबसे उत्तम सोना, मणि तथा रत्न उनको हार बनानेके लिये दिये जायें। साथही उन सुनारोंकी निगरानी करनेके लिये उन्होंने अपनी ओरसे कई विश्वासी नौकर रख दिये। कारण, किसीका विश्वास एकाएक नहीं कर लेना चाहिये ख़ासकर चोर, जुआड़ी, तेली, सुनार, घोड़ा, ठग, ठाकुर, सर्प और दुर्जनोंपर विश्वास करनेवाला तो गँवार ही कहलाता है।

सुनारोंने छः महीनेमें वह हार तैयार किया। उस परम मनोहर हारको देखकर राजा बड़े ही प्रसन्न हुए। सभासदोंको भी उसे देखकर बड़ा आनन्द हुआ। राजाने उसी समय उस हारका नाम "देववल्लभ" रख दिया। उन सुनारोंको बहुतसा धन-वस्त्र इनाम मिला। वे भी मुँहमाँगी भेट पाकर अपने नगरको लौट गये।

इसके बाद राजाने निपुण ज्योतिषियोंको बुलाया। उनसे अच्छा दिन और शुभमुहूर्त्त पूछकर राजाने उसदिन वह हार अपने कण्ठमें पहना। उसी समय नैऋत्य-कोणमें बैठे हुए किसीने छींक दिया। यह सुनकर राजाको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने पासही बैठे हुए एक ज्योतिषीसे पूछा,—"ज्योतिषीजी! कृपा-कर यहतो बतलाइये, कि इस छींकका क्या नतीजा होगा?"

ज्योतिषीने कहा,—"महाराज! यह छींक वैसी बुरी नहीं है; क्योंकि कहा हुआ है, कि बैठे हुए या किसी कामकी इच्छा करने वाले पुरुषके लिये दिशाके भेदसे छींक शुभ या अशुभ हुआ करती है। यदि पूरब ओर छींक हो तो अवश्यही लाभ होगा। अग्नि-कोणमें हो तो हानि होगी। दक्षिण दिशामें हो तो मरण और नैऋत्य-कोणमें हो तो चिन्ताका कारण होता है। पश्चिममें हो तो बहुत संपत्ति मिलती है; वायव्यमें हो तो सुख होता है; उत्त-रमें हो तो धनका लाभ होता है और ईशान-कोणमें हो तो लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। राह चलते सामने छींक हो तो मरण की सूचना समझनी चाहिये। उस समय यात्राका विचार छोड़-कर घर लौट आना चाहिये। यदि यात्रा करते समय पीछे छींक हो तो उस कार्यकी सिद्धिही समझनी चाहिये।"

ज्योतिषीकी यह बात सुनकर राजाने वह हार उतारकर भण्डारमें रखवा दिया।

कुछ दिन बाद राजाने फिर अच्छा दिन सोचकर वह हार मँगवाया। भण्डारीने ख़ज़ानेमें जाकर जब उस हारको नहीं

देखा, तब डरता हुआ राजाके पास आकर बोला,—"हे स्वामी! मैंने बहुत ढूँढ़ा; पर वह हार नहीं मिला।"

यह सुन, राजाको विस्मयके साथ-साथ बड़ा क्रोध हुआ। वे बिगड़कर भण्डारीसे बोले,—"भण्डारमें तुम्हारे सिवा और कोई नहीं जाता; फिर हार का क्या हुआ?"

भण्डारीने कहा,—"महाराज! मुझसे तो कुछ कहा नहीं जाता। यदि आपको यों विश्वास न हो तो मैं शपथ खानेको तैयार हूँ।"

यह सुन, मन्त्रियोंने राजासे कहा,—"महाराज! बिना अच्छी तरह खोज-पड़ताल किये, किसीपर झूठमूठ कलङ्क लगाना ठीक नहीं; क्योंकि बिना विचारे काम करनेसे पीछे पछतावाही हाथ आता है। विचार-पूर्वक काम करनेवाला कभी विपद्के समुद्रमें नहीं गिरता।"

इसके बाद राजाने मन्त्रियोंकी सम्मतिसे नगर-भरमें ढिंढोरा पिटवाया, कि जो कोई देववल्लभ नामक हारको खोज लायेगा, उसे राजाकी ओरसे पाँच गाँव इनाममें दिये जायेंगे।

जब सात दिनों तक ढिंढोरा पिटनेपर भी कोई यह काम करनेके लिये आगे नहीं आया, तब राजाने भूमिदेव नामके एक परम निपुण ज्योतिषीको बुलवाकर उस हारका पता पूछा। उसने कहा,—"मैं इसका हाल कल बतलाऊँगा।"

दूसरे दिन उसने आकर कहा,—"राजन्! आप इस हारका हाल मुझसे मत पूछिये; क्योंकि यदि मैं नहीं बतलाऊँगा, तो

आपको थोड़ा ही दुःख होगा; पर बतलाने पर बड़ा भारी कष्ट होगा।"

यह सुन राजाकी उत्सुकता बहुत बढ़ गई। वे हठ करके उस ज्योतिषीसे पूछने लगे। लाचार उस ज्योतिषीने कहा,—"हे राजन्! लाखों रुपयोंके मोलका वह देवबल्लभ हार जिसने पाया है, वही आपकी गद्दीपर बैठेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। बहुत दिनों बाद तुम्हें उस हारका पता लगेगा। आजके ठीक तीसरे दिन आपका हाथी मर जायेगा। इसी बातको अपने राज्य-नाशकी निशानी समझेंगे।"

ज्योतिषीकी यह बात सुन, राजाको बड़ा दुःख हुआ। सारा हाल सुन, मन्त्रियोंने कहा,—"महाराज! आप इस बातकी कुछभी चिन्ता न करें; क्योंकि होनहार तो होकरही रहती है।"

ठीक तीसरे दिन राजाका हाथी मर गया। अबतो राजाको ज्योतिषीकी बातका पूरा विश्वास हो गया। पर वे करही क्या सकते थे? होनहार किसीके टाले टलने वाली होती तो राजा नल, रामचन्द्र और युधिष्ठिर आदि प्रतापी पुरुषोंको तरह-तरहके दुःख क्यों उठाने पड़ते? कहा भी है, कि चाहे सूर्य्य पश्चिममें उगने लगे, मेरु-पर्वत चलने लगे आग ठंढी हो जाये, पर्वतपर कमल उगने लगे, तोभी विधिकृत कर्मरेखा नहीं टल सकती।

इसके बाद राजाने बड़े धैर्य्यसे यह दुःख मनका मनमें ही दबाकर अपने पुत्रका विवाह किया। विवाहके बाद राजाको फिर उस हारकी बात याद हो आयी। याद आतेही उनका

चित्त बड़ा दुःखित हो गया उन्होंने अपने मन्त्रीको बुलाकर कहा,—"हे मन्त्री! मैं उस हारके चोरको अवश्यही फाँसी दिलवा दूँगा। मेरा यह राज्य मेरे पुत्रके सिवा और किसीको नहीं मिल सकता।"

ऐसा विचारकर उन्होंने नगरके बाहर एक स्थान पर शूली खड़ी करवाई। सच है, अभिमान हर किसीको होता है। टिटहरी को आसमानको सोनेपर रखनेका सपना देखती है।

पुत्र-प्राप्ति ।

उसी नगरमें कुबेरके समान अपार धन-सम्पत्तिशाली एक श्रावक रहता था, जिसका नाम पासदत्त था। उसकी पत्नीका नाम प्रियश्री था। परन्तु पूर्व जन्मके कर्म-संयोगसे कुछ दिनों बाद उसकी सारी संपत्तिका नाश हो गया और वह बेचारा निर्धन हो गया। इस अवस्थाको प्राप्त होकर वह उस नगरको छोड़कर पासके श्रीनिवास नामक ग्राममें आकर रहने लगा। कहा भी है कि बुरेदिन आनेपर राजाका लड़का भी अपनेही कर्मचारियोंके घर चोरी करता है, व्यापारी झोली लेकर दूसरेके मालकी फेरी करते हैं, ब्राह्मण भीख माँगते हैं, अन्य जाति वाले दूसरोंके दास बन जाते हैं, सेठजी घरके गहने बेंच खाते हैं, नीच लोग घर-घर भीख माँगते डोलते हैं, किसान दूसरेका हल जोतते हैं और स्त्रियाँ चरखा कातकर दिन बिताती हैं।

उस गांवमें पहुँचकर वह किसी ज़मानेमें सेठ कहलानेवाला व्यक्ति कन्धेपर कपड़ोंका गट्ठर लादे हुए कपड़ेकी फेरी करता

हुआ गाँव-गाँव घूमने लगा। इसीसे किसी तरह उसका गुज़ारा होने लगा। देहातमें रहनेसे खर्च भी कमही पड़ता था; क्योंकि नया अन्न, नया साग, अच्छा घी और बढ़िया दूध-दही देहातमें सस्ते दामोंमें ही मिलता है। परंतु वहाँ रहकर वह सिवा पेट पालनेके और अधिक धन नहीं जोड़ सका; क्योंकि कहावत है, कि 'जाओ नेपाल, सँग जावै कपाल'। पूर्वकर्मोंके संयोगसे चाहे जहाँ जाओ एकही सा लाभ होता है। किसी महात्माने भी कहा है,—

कर्म कमण्डल कर लिये तुलसी जहँ लगि जाय।
सरिता, सागर, कूपजल, बूँद न अधिक समाय॥

यही सोचकर तो चतुर और बुद्धिमान् मनुष्य देश-देश मारे फिरना बिलकुल बेकार समझते हैं; परंतु धनके लिये आदमीको सब कुछ करना और सब जगह जाना ही पड़ता है; क्योंकि इस संसारमें धनके बिना कोई आदर नहीं करता। कहा हुआ है, कि—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतिमान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति॥

अर्थात्—"जिसके पास धन है, वही कुलीन माना जाता है; वही पण्डित, शास्त्रज्ञ, गुणज्ञ, वक्ता, स्वरूपवान् कहा जाता है; क्योंकि धनमें ही सारे गुण भरे हैं।"

अस्तु। इसी तरह दिन बीतते रहे। इसी बीच उस सेठके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। घोर दरिद्रता भोगते रहने पर भी सेठ और सेठानीको पुत्र पाकर परम आनन्द हुआ। क्योंकि,—

संसारभारखिन्नानां, तिस्रो विश्रामभूमयः।
अपत्यं च कलत्रं च, सतां संगतिरेव च॥

अर्थात्—"इस संसारके तापसे दग्ध मनुष्योंके लिये तीनही विश्रामके स्थान हैं—पुत्र स्त्री और साधु-संगति।

परन्तु अभाग्यवश वह लड़का भी साल-भरका होकर मर गया। इससे उसकी माताको बड़ा दुःख हुआ; क्योंकि,—

नारीणां प्रिय आधारः स्वपुत्रस्तु द्वितीयकः।
सहोदरस्तृतीयः स्या दाधारात्रितयंभुवि॥

अर्थात्—इस संसारमें स्त्रियोंका पहला आधार तो पति है; दूसरा अपना पुत्र और तीसरा सहोदर भाई।

इसलिये पुत्रके लिये माताको दुःख होना तो स्वाभाविकही है। इसी तरह बेचारा सेठभी अपनी पहली अवस्था और पुत्रकी मृत्युको याद कर-करके दुःखी होने लगा। उसे इस तरह दुःखपर दुःख पाकर घोर कष्ट होने लगा। एकतो जैसे तारा बिना आकाश और जल बिना सरोवर सूखा और उदास मालूम होता है, वैसेही धन बिना मनुष्यको सब कुछ सूनाही दीखता है; क्योंकि धनहीन पुरुषका शील, शौच, क्षमा,

दाक्षिण्य, मधुरता और कुलीनता आदि सभी गुण बेकार हो जाते हैं। दूसरे बेचारेको पुत्रशोक भी सहन करना पड़ा। यहतो वही हाल हुआ, कि—

ग्रामे वासो दरिद्रत्वं, मूर्खत्वं कलहो गृहे।
पुत्रैः सह वियोगश्च दुःसहं दुःखपञ्चकम्॥

अर्थात्—गाँवका रहना, दरिद्रता, मूर्खता, घरकी फूट, पुत्रोंका वियोग ये पाँच दुःसह दुःख हैं।

इसलिये बेचारेके जीपर जो कुछ बीत रही थी, वह वही जानता था। एक दिन उसकी स्त्री प्रियश्रीने कहा,—"यहाँ आकर हमें धन मिलना तो दूर रहा, हमारा पुत्रभी जाता रहा। इस तरह सूदके लोभमें पूँजी भी चली गयी। इस लिये हमें अब यह पापी गाँव छोड़ देना चाहिये; क्योंकि जहाँ न तो विद्याकी प्राप्ति, न धनकी, और जहाँ धर्म-कर्मभी नहीं मिले, वहाँ एक दिनभी नहीं रहना चाहिये। इसके विपरीत जहाँ जिन मन्दिर हो,शास्त्रज्ञ श्रावक हों, जल और ईंधनकी कमी न हो, वहीं जाकर बस रहना चाहिये। बुरे गाँवका रहना, बुरे राजाकी सेवा, बुरा भोजन, झगड़ालूस्त्री, बहुतसी लड़कियोंकी पैदाइश और दरिद्रता—ये छहों बातें जीते-जी नरकका दुःख देने वाली हैं।"

यह कहते-कहते उसके हृदयमें शोक उमड़ आया और वह दैवको दोष देती हुई कहने लगी,—"हा दैव! अबजो जन्म देना, तो आदमीके घर कभी पैदा न करना और यदि आदमीही बनाना,तो

पुत्र नहीं देना। कदाचित् पुत्र देनातो उसका वियोग नहीं दिखाना।"

यह कह, वह बड़े ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगी। सेठ उसे समझाने लगा; पर उसका दुःख किसी प्रकार कम होता नहीं दिखाई दिया। अन्तमें वह फिर अपने स्वामीसे कहने लगी,—"प्राणनाथ! यहीं रहते-रहते मेरा पुत्र मारा गया। इसलिये मैं यहाँ कदापि न रहूँगी। आप जल्द यहाँसे अशोकपुर चले चलिये।"

सेठने कहा,—"प्यारी! हमसे ग़रीबोंका गुज़र शहरमें नहीं हो सकता; क्योंकि वहाँ दूध-दही, अन्नजल और ईंधनके लिये बहुत पैसा ख़र्च करना पड़ता है। इस लिये नगरमें धनवानों को ही रहना चाहिये। इस दरिद्रताकी हालतमें वहाँ जानेसे कोई हमारी बातभी न पूछेगा। फिर वहाँ क्यों जाना? कहा हुआ है कि,—

"हे दारिद्र्य! नमस्तुभ्यं, सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः।
पश्यामि सकलान् लोकान्, न मां पश्यति कश्चन॥

अर्थात्—"हे दरिद्रता! तेरी बदौलत मैं तो सिद्ध हो गया; क्योंकि मैं सबको देखता हूँ; पर मुझे कोई नहीं देखता"

"धनके बिना इस संसारमें कोई अपना हितमित्र नहीं होता। देखो, यदि जल सूख जावे तो कमलका मित्र होकर भी सूर्य्य उसकी कोई भलाई नहीं कर सकता।"

अपने स्वामीकी ये बातें सुन, प्रियश्रीने कहा,—"नाथ! आपका कहना बिलकुल सच है। आप पुरुष हैं, आपकी विद्या-बुद्धि मुझसे कहीं बढ़ी-चढ़ी है तो भी मैं जो कुछ कहती

हूँ, उसे कृपाकर सुन लीजिये। इस गाँवमें रहने वाले लोग अधिकतर दरिद्र हैं। इनके साथ रहते-रहते आपभी दिन-दिन दरिद्रही होते चले जाते हैं। इसलिये यहाँ धन प्राप्ति होनी असम्भव है। कुएँमें जितना पानी होगा, उतनाही नालीमें आयेगा जब कुआँही सूखा होगा, तब पानी कहाँसे आयेगा। इसलिये अब हमें यहाँ एक दिनभी नहीं रहना चाहिये।"

अपनी स्त्रीका ऐसा आग्रह देख सेठने नगरमें जाना स्वीकार कर लिया; क्योंकि राजा, स्त्री, मूर्ख, बालक, अन्धों और रोगियोंकी हठ बड़ी चलती होती है।

एकदिन ज्योंही उस सेठने अपनी स्त्रीके साथ नगरमें जानेके लिये पैर आगे बढ़ाया, त्योंही उसके पैरमें काँटा गड़ गया। बस उसने जानेका विचार छोड़ दिया और उसी गाँवमें रह गया। कहते हैं, कि कहीं यात्रा करते समय छींक पड़े, बालक गिर पड़े, कोई पूछ बैठे, कि कहाँ जाते हो? पैरमें काँटा गड़ जाये, बिल्ली या साँप देखनेमें आये, तो यात्रा नहीं करना ही अच्छा है।

उसी दिन रातको प्रियश्रीने सपना देखा, कि उसे ज़मीन खोदते-खोदते मोती मिला है। यह सपना देखते ही उसकी नींद खुल गयी और उसने अपने स्वामीको जगाकर यह हाल कह सुनाया। सेठने उस सपनेका हाल सुनकर कहा,—"प्यारी! यहीं रहते-रहते तुम्हें मोतीके समान निर्मल कान्तिवाला गुणी पुत्र प्राप्त होगा। यही इस स्वप्नका फल है; क्योंकि कहा हुआ है, कि यदि स्वप्नमें राजा, हाथी, घोड़ा, सोना, साँढ़, गौ,

आदि चीज़े दिखाई दें, तो वंशकी वृद्धि होती है और यदि दीप, अन्न, फल, पत्र, कन्या, छत्र और ध्वजा दिखाई दे, तो सम्पत्ति और सुख प्राप्त होता है। गौ, अश्व, राजा, गज, और अश्वके सिवा यदि स्वप्नमें काले रङ्गकी और चीज़े दिखाई दें, तो बहुत बुरे फल दिखलाती हैं। नमक और कपासके सिवा अन्य सफ़ेद चीज़े सपनेमें दिखाई दें, तो बहुत अच्छा फल होता है। स्वप्नमें मनुष्यको देवता, गुरु, गाय, पिता, सन्यासी और राजा जो बातें कह जाते हैं, वह ज़रूर सच होकर ही रहती हैं।"

पतिकी ऐसी बातें सुन प्रियश्रीको बड़ा आनन्द हुआ। वह बड़े सुखसे दिन बिताने लगी। क्रमशः पूरा समय होनेपर उसके गर्भसे एक सुन्दर बालक शुभ मुहूर्त्तमें उत्पन्न हुआ। सेठने अपनी उस समयकी स्थितिके अनुसार उस बालकके जन्मकी बधाई धूमधामसे मनायी।
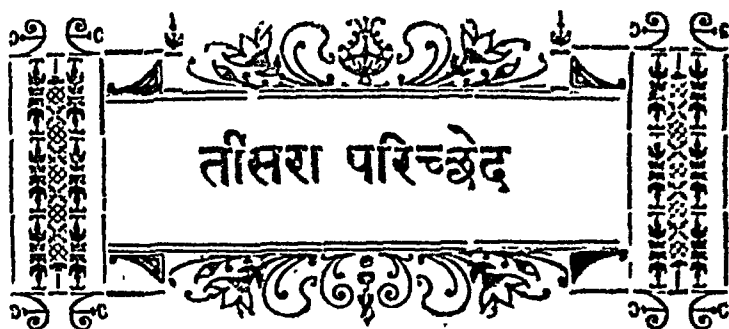
तीसरा परिच्छेद

अशोकपुर-यात्रा।

इसी तरह वर्षों बीत गये। तब सेठने पुनः अशोकपुरकी ओर जानेका विचार किया। जिस दिन जानेकी तैयारी हुई और वह जाने लगा, उस दिन यात्राकेही समय एक कबूतर मुँहमें कुछ खानेकी चीज़ लिये दाहिनी ओरसे होकर बायीं ओर चला गया। यह देख, सेठने एक शकुन-विचार करनेवालेको बुलाकर पूछा, कि इस शकुनका क्या फल है? उसने कहा,—"इस शकुनका फल बड़ाही शुभ है। आप अब अवश्यही नगरकी यात्रा करें, आपको सब प्रकारसे सिद्धि-लाभही होगा। कहा हुआ है, कि रास्तेमें जाते समय यदि कुत्ता कोई बुरी चीज़ खाता दिखाई दे तो देखनेवालेको अच्छी-अच्छी चीज़ें खानेको मिलेंगी। यदि उसके मुँहमें धान्य हो तो लाभ, विष्ठा हो तो सुख और माँस हो तो राज्यकी प्राप्ति होती है।"

यह बातें हो ही रही थीं, कि इतनेमें एक कुत्ता कान खुजाता हुआ नज़र आया। यह देख उस सगुन विचारनेवालेने कहा,—"सेठजी! आप अवश्यही इस समय यात्रा करें। आपको बड़ा लाभ होगा; क्योंकि यात्रा करते समय यदि कुत्ता कान खुजाता हुआ दिखाई दे, तो द्रव्य और महत्वकी प्राप्ति होती है।"

यह सुन, सेठने उस सगुन विचारने वालेको ख़ूब इनाम देकर विदा किया और उसी दिन यात्रा करदी। जब वे लोग अशोकपुर नगरके पास आपहुँचे, तब सेठने अपनी स्त्रीसे कहा,—"प्यारी! बस यहीं बगीचेमें भोजन करके हमें नगरमें प्रवेश करना चाहिये; क्योंकि कहा हुआ है, कि—

अभुक्त्वा न विशेद्ग्रामं, न गच्छेदेककोर ध्वनि।
ग्राणो मार्गे न विश्रामः, पंचोक्तं कार्यमाचरेत॥"

"अर्थात्—भोजन किये बिना किसी ग्राममें नहीं जाना चाहिये, मार्गमें कभी अकेला नहीं चलना चाहिये, रास्तेके बीचमें नहीं ठहरना चाहिये और पाँच पंचोंकी कही हुई बात जरूर माननी चाहिये।"

इसके बाद सेठने अपनी स्त्री और पुत्रके साथ एक आमके वृक्षके नीचे विश्राम किया। सबसे पहले नहा-धोकर देवपूजा की। इसके बाद भोजन किया और थोड़ी देर तक आमके पेड़के नीचे आराम किया। इसी समय उसने अपने मनमें विचार किया,—"अहा! यह आमका पेड़ भी धन्य है, जो सदा परोप-

कारही करता रहता है; पर मैं ऐसा अभागा हूँ, कि निर्धनताके मारे मुझसे कभी किसीकी भलाई नहीं बन पड़ती। इधर इस आमकी मंजरियोंसे कोयलोंका, रज-कणोंसे भौंरोंका, और फलोंसे राह चलते मुसाफ़िरोंका निरन्तर उपकार होता रहता है।"

यही सोचते- सोचते उसके जीमें ख़याल आया, कि नगरमें जाकर मैं किस प्रकार व्यवसाय करूँगा। मेरे पास पूँजी कहाँ है? फिर मुझे द्रव्य लाभ कहाँसे होगा? कारण, गाय उतनाही दूध देती है, जितना उसे खानेको दिया जाता है, खेत वर्षाके परिमाणके ही अनुसार अन्न उपजाते हैं और व्यापारमें पूँजीके ही अनुसार लाभ होता है। फिर आजकलके ज़मानेमें विना वस्त्रादिके आडम्बरके कहीं आदरही नहीं होता। फिर मैं कहाँसे इतना धन लाऊँ? कहावत है, कि स्त्रियोंके सामने, राजसभामें, सभा-समितियोंमें, व्यवहारमें, शत्रुओंके निकट और सुसरालमें आडम्बरके ही द्वारा मान मिलता है।'

सेठ इसी तरहकी बातें सोच रहा था कि इतनेही में अकस्मात् यह आकाश-वाणी सुनाई दी,—"सुनो! यह बालक जब पन्द्रह वर्षका होगा, तब इसी नगरका राजा हो जायेगा, इसलिये तुम अपने मनमें तनिक भी चिन्ता न करो।"

यह आकाश-वाणी सुनतेही सेठ चकित होकर चारों ओर देखने लगा। इतनेमें प्रियश्रीने कहा,—"स्वामी! यह आकाश-वाणी अवश्यही सत्य होगी। हमारा बिगड़ा हुआ भाग्य अवश्यही किसी दिन बन जायेगा।"

एक देवता प्रकट हुए और सेठ से कहने लगे,—"मैं आपका वही पहला पुत्र हूँ और मर कर देवता हुआ हूँ। (पृष्ठ १६)

सेठने कहा,—"प्यारी! तुम्हारा कहना बिलकुल सच है; पर हमारे लड़केको राज्यसे क्या काम! हमतो यही चाहते हैं, कि यह दीर्घजीवी हो, जैसे पानी बिना सरोवर और सुगन्ध बिना फूल नहीं सोहता, वैसेही सारे शुभ लक्षणोंसे युक्त पुरुष भी अल्पायु हो तो किस कामका? हमारे अभाग्यके मारे हमारा एक लड़का तो बचपनमें ही मर गया; अबतो इसीपर सारी आशा है; पर यह आशा पूरी होनीभी दैवाधीन है।"

इतनेमें फिर आकाश-वाणी हुई,कि यह बालक बड़ा भारी राजा तो होगा ही; साथही लम्बी आयुभी पायेगा। इतना ही नहीं, यह जिनधर्मका अनुरागी और सब प्रकारके सौभाग्यका भाजन होगा।

इस बार यह आकाश-वाणी श्रवणकर दोनों स्त्री-पुरुष बड़ेही सुखी हुए। सेठने फिर नीचे-ऊपर और अगल-बगल दृष्टि दौड़ाई; पर कहीं कोई मनुष्य या देवता नहीं दिखाई दिया। अबके उसने फिर अपनी स्त्रीसे कहा,—"पुण्यके बिना प्राणियोंको कदापि देव-दर्शनका सौभाग्य नहीं होता। जिसका पूर्वकृतपुण्य प्रबल होता है, वही उनके दर्शन पाता है। न मालूम यह कौन देवता थे, जो हमें इस प्रकारकी वाणी आनन्ददायिनी सुना गये।"

बात पूरी होते-न-होते एक देवता प्रकट हुए और सेठसे कहने लगे,—"मैं आपका वही पहला पुत्र हूँ और मरकर देवता हुआ हूँ। उस समय आपने जो नमस्कार-महामन्त्रका उच्चारण

किया था, उसीके प्रतापसे मैं धरणेन्द्रके परिवारमें देवता हो गया हूँ। इस आशुवृक्षका मै ही अधिष्ठयव्य देवता हूँ। आपके स्नेह और अपने भाईके प्रेमके कारण मैं अपने इस भाईको राजा बनानेके लिये पूरी चेष्टा करूँगा। मेरा यह भाई बड़ा भाग्यवान् है। इसलिये आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। हाँ, आजसे आप इसे मेरेही नामसे पुकारा करें, जिससे यह दीर्घायु होकर संसारके सारे सुख भोग करे।"

सेठने पूछा,—"हे देव! तुम्हारा नाम क्या है?"

देवताने कहा,—"मेरा नाम प्रियङ्कर है।"

उसी समय सेठने अपने पुत्रका नाम प्रियङ्कर रख दिया। देवताने फिर कहा,—"अबसे जब कभी आपपर कोई सङ्कट आये, तब यहीं आकर इस वृक्षके नीचे धूप जलायेंगे, बस मैं तुरत आकर आपकी इच्छाके अनुसार काम कर दूँगा। कहा भी है, कि भोगसे ही देवता, यक्ष, भूत, प्रेत सभी सन्तुष्ट होते हैं और विघ्नोंका नाश करते हैं।" यह कह, वह देवता अदृश्यहो गये।

इसके बाद सेठने शुभ मुहूर्त्तमें नगरके भीतर प्रवेश किया। उसी समय दाहिनी ओरसे एक गधा निकल गया। लोग कहते हैं, कि गाँवके बाहर जाते समय बायीं ओरसे और अन्दर आते समय दाहिनी ओरसे गधा चला जाये, तो अच्छा है। पीछेकी ओरसे चला जाये, तो यात्रा ही रोक दे और सामने आ जाये, तो भी यात्रामें विघ्नही समझे। प्रथम शब्द हानि कारक होता है, दूसरा सिद्धिदायक, तीसरा यात्रा रोकने वाला, चौथा स्त्री-

समागमकी सूचना देनेवाला, पाँचवाँ भयदायक, छठा क्लेश-कारक, सातवाँ सर्व-सिद्धिदाता, और आठवाँ लाभदायक। इस प्रकार सब तरहके अच्छे सगुनोंका विचार करके सेठने नगरके भीतर प्रवेश किया और अपने पुराने मकानमें ही आकर रहने लगा।

उस दिनसे उसके दिन बड़े आनन्दसे कटने लगे और प्रियंकर भी अपने माता-पिताको आनन्द देता हुआ दिन-दिन बड़ा होने लगा।

चौथा परिच्छेद

अपमान ।

कुछ दिन बाद प्रियंकरके मामाका विवाह होना निश्चित हुआ। इसलिये वह अपनी बहनको यानी प्रियंकरकी माता प्रियश्रीको बुलाने आया। उसनेभी अपने स्वामीकी आज्ञाले, भाईके साथ,पीहर जाने की तैयारीकी। सच है, माँ-बाप, पति, पुत्र और सहोदर भाई, ये पाँचों स्त्रियोंके हर्षके करण होते हैं। इसी अवसर पर उसकी और-और बहनें भी पीहर आयी हुई थीं; पर वे सब धनी घरकी थीं, इसलिये बड़े ठाटबाटसे पहुँची हुई थीं। उनके साथ बहुतसे दास और दासियाँ आयी हुई थीं। उनके रेशमी कपड़े, हीरा-मोती-जड़े गहने, इत्र फुलेलकी सुगन्ध आदि देखकर देखनेवालोंकी आंखें निहाल हो जाती थीं। उनके गहने-कपड़ोंकी शोभासे लोग लुगाइयाँ मुग्ध हो जाती थीं। वे जिस ओरसे निकल जाती, उधरके ही लोगोंकी टकटकी बँध जाती थीं।

इधर पासदत्तकी पत्नी प्रियश्री निर्धन होनेके कारण मामूली वेश लिये हुई पीहर आई। उसका वह वेश देख सबने उसकी ओरसे आँखें फेर लीं। किसीने हँसकर दो-दो बातें भी नहीं

थीं। लाचार वह घरके एक कोनेमें ही पड़ी रहने लगी और सबने मिल जुलकर उसे चौका-बासनका ही काम दे डाला! अपना ऐसा निरादर होते देखकर उसने सोचा,—"ओह! इस संसारमें कोई किसीका अपना नहीं है। सब स्वार्थकेही नाते हैं। फल-रहित वृक्षको पक्षी नहीं पूछते, सूखे सरोवरको हंस नहीं पूछते, गन्ध रहित फूलोंको भौंरे नहीं पूछते, राज्यभ्रष्ट राजाको कर्मचारि नहीं पूछते, निर्धन पुरुषोंको वेश्याएँ नहीं पूछती, जले हुए वनको मृग नहीं पूछते। सच पूछो, तो जिससे कुछ अपना काम निकलता है, उसीका संसार आदर करता है। सच्चा स्नेही कोई विरलाही होता है।"

उसकी यह दुर्दशा देखकर उसकी बहनेंही उसपर ताना मारती थीं। और-और लोग यह कह उठते थे,—"देखो, पुण्य और पापमें कितना अन्तर होता है। इसकी बहनें पुण्यके प्रतापसे रानीकी तरह हुक्म चलाती हैं और यह दासीकी तरह उनके हुक्मकी तामील करती है।"

इस तरह सबको अपने ऊपर ताने-तिश्ने छोड़ते देख प्रियश्री मन-ही-मन बड़ी दुखी हुई और सोचने लगी,—"संसारमें लोग कुल या गुण नहीं देखते—केवल धनही देखते हैं। कहा भी है, कि जाति, विद्या, रूप सब कुछ भाड़में चला जाये, केवल धनकी ही वृद्धि होती रहे, तो लोग उसे सब गुणोंकी खानही समझेंगे। सचमुच मैंने पूर्व जन्ममें पुण्यकर्म नहीं किये, तभी ऐसी दरिद्र बन गयी हूँ। मेरी इन बहनोंने अवश्यही पूर्व-

जन्ममें अच्छे-अच्छे कर्म किये होंगे, इसीसे ये इतना सुख भोग रही हैं।”

अस्तु। विवाहकी धूमधाम खतम हो जानेपर सभी बहनों-को उनके माता-पिताने रेशमी वस्त्र और आभूषण आदि देकर बड़े आदरसे विदा किया। इधर प्रियश्रीको उसके माँ-बाप और भाइयोंने एक सफेद साड़ी देकर विदाकर दिया। इससे उसको बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। रास्तेमें जाते-जाते उसने सोचा,—“देखो अपने सगे माँ-बाप और भाई भी किस तरह अपनी ही भिन्न-भिन्न बहनोंको भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे देखते हैं; पर इसमें उनका कुछ भी अपराध नहीं है। यह सब मेरे पूर्व-कृत पापोंका ही परिणाम है। इसलिये मैं आजसे धर्मको ही अपना भाई समझती हूँ; क्योंकि भाई, बेटे, बाप, माँ आदि सभी लोग वैरी हो जायें तो भले ही हो जायें; पर धर्म सदा अपना मित्र ही बना रहता है।”

यही सब सोचती-विचारती हुई प्रियश्री उदास मुँह बनाये अपने घर लौट आयी। इस तरह उदास देख सेठ पासदत्तने उससे इसका कारण पूछा। पहले तो कुछ देरतक वह कुछ भी न बोली; पर जब स्वामीने बार-बार पूछा, तब उसे बतलाना ही पड़ा; क्योंकि यद्यपि भले घरकी बेटियाँ लाख दुःख पानेपर भी अपने पीहरकी बुराई सुसरालमें नहीं करतीं, तथापि पतिको अपना गुरु, देवता और पूज्य जानकर उसे स्वामीकी आज्ञा माननी ही पड़ी।

उसकी बातें सुन पासदत्तने कहा,—"इस अपमानका कारण हमारी दरिद्रता ही है। यह सब पूर्वकर्मोंका फल है। इसलिये चिन्ता न करो और सदा पुण्यका आचरण करती रहो। जैसा कर आये हैं, वैसा भोग रहे हैं। अब जैसा करेंगे वैसा आगे पायेंगे।"

इस प्रकार अपने स्वामीका आश्वासन पाकर वह नित्य नमस्कार-महामन्त्रका स्मरण, उपसर्गहर-स्तोत्रकी आवृत्ति, देवता की वन्दना, कायोत्सर्ग और प्रतिक्रमण आदि धर्म कार्योंका आचरण करने लगी। सेठ भी विशेष प्रकारसे अष्ट प्रकारी पूजा करने लगा। इस प्रकार दिन-दिन उनका अनुराग धर्म-कार्योंमें बढ़ने लगा और उनके पूर्व पुण्योंका भी उदय हो चला।

दिन फिरे।

एक दिन प्रियश्री घर लीपनेके लिये मिट्टी लानेके लिये नगरके बाहर चली गयी। ज्यों ही उसने मिट्टी खोदी, त्योंही उसे उसके भीतर पुण्यका प्रकाशक और दारिद्र्यका विनाशक गड़ा हुआ खज़ाना दिखाई दिया। सच है, जब पूर्व पुण्योंका उदय होता है, तब सभी सुख सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। उस ख़ज़ानेको देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उसे फिर मिट्टीसे ढककर अपने स्वामीको ख़बर देने चली आयी। सेठने भी वहाँ आकर ख़ज़ानेको देखा और झट राजाको ख़बर दे दी। राजाने अपने आदमियोंको भेजकर वह ख़ज़ाना ज़मीनके अन्दरसे निकलवा लिया। इसके बाद राजाने अपने मन्त्री, पुरोहित आदिसे पूछा, कि इस धनको क्या किया जाये? सबने कहा, कि इस तरह ज़मीनके अन्दर छिपे हुए धनका मालिक राजा ही होता है। इस लिये यह सारा धन आपका ही होता है; तो भी यदि आप चाहें तो थोड़ा-बहुत इस सेठको भी दे दे सकते हैं।"

यह सुन, राजाने ज्यों ही उस धनको लेनेके लिये हाथ बढ़ाया, त्योंही अकस्मात् यह वाणी प्रकट हुई,—"यह सारा ख़ज़ाना इसी सेठको मिलना चाहिये। यदि दूसरा कोई इसे लेगा तो तुरन्तही जलकर भस्म हो जायेगा।"

यह सुनते ही राजा और उनके सभी कर्मचारी डर गये। सबने वह धन सेठको ही दे देना उचित समझा। वे समझ गये, कि कोई यक्ष इस धनका रक्षक है। यही निश्चयकर सब लोगोंने उस सेठको ही यह धन दे देनेका फैसला कर दिया। राजाने पूछा,—"सेठजी! तुमने जिस समय यह ख़ज़ाना देख पाया था, उस समय वहाँ और कोई था या तुम अकेले ही थे?"

सेठने कहा,—"इस बातको मेरे और मेरी स्त्रीके सिवा और कोई नहीं जानता।"

राजाने पूछा,—"तो फिर तुम राजदरबारमें क्यों ख़बर देने आये?"

सेठने कहा,—"महाराज! मैं पराये धनसे सौ कोस दूर भागता हूँ। इसीलिये मैंने इस धनके लिये लालच नहीं किया। साथही जमीनके अन्दर जो कुछ होता है, वह सब राजाका ही होता है। इसीसे मैंने आपके पास आकर खबर दी, बड़े लोग कह गये हैं' कि किसीकी भूली हुई, खोयी हुई, गिरी हुई, पड़ी हुई, या छिपाई हुई, चीज़को बिना मालिकके हुक्मके नहीं लेना चाहिये। बिना दिये हुए किसीका एक तिनका भी ले लेना महा पाप है। प्रत्येक मनुष्यको ईमानदारीसे

प्राप्त किया हुआ धन ही ग्रहण करना उचित है। यही धन शुद्ध होता है और इसीसे किया हुआ धर्म-कर्म शुद्ध माना जाता है। इसीसे धान्य, देह, पुत्र और धर्मानुष्ठानकी शुद्धि होती है। शुद्ध देहवाला प्राणी ही धर्मकरने योग्य होता है। और उसको हरएक कार्यमें सफलता होती है।"

सेठके इस दृढ़ निश्चयको देखकर राजाने बड़े ही सन्तोषके साथ वह सारा धन उसीको दे दिया और कहा,—"सेठजी! यह धन तुम्हारे ही पुण्यसे प्रकट हुआ है, इसलिये मैं इसे तुमको ही दिये देता हूँ।"

यह कह, धन दे, राजाने उसे बड़े आदर-मानके साथ विदा किया। वह धन घर लाकर सेठ सोचने लगा,—"इस संसारमें मुझे नियम पालन करनेका फल प्राप्त हो गया। सच है, जैसे स्वयंवरा कन्या आपसे आप योग्य वरके पास आती है, वैसेही जो शुद्ध हृदय पुरुष दूसरोंकी चीज़पर मन नहीं ललचाते, उनके पास आपसे आप लक्ष्मी चली आती है। इसलिये भाग्यवान् पुरुषोंको चाहिए, कि इस नियमका पालन अवश्य करें। यह मामूलीसा नियम बहुत बड़े लाभका कारण होता है।"

इतनेमें सेठकी स्त्री वहाँ चली आयी। उसे देख, सेठने कहा,—"प्यारी! यह सारा धन मुझे ही मिल गया। यह सब धर्मका ही प्रताप समझो।"

इसके बाद उसी धनकी बदौलत सेठ पासदत्त कुछही दिनोंमें बड़ा भारी दौलतमन्द हो गया। उसने ख़ूब रुपया ख़र्चकर एक

नया महल तैयार करवाया और उसीमें जाकर रहने लगा। तरह-तरहके व्यापार करके उसने अच्छा धन उपार्जन किया और अपनी पत्नीके साथ संसारके समस्त सुख भोग करने लगा। प्रियश्री भी अपने स्वामीके सिखाये अनुसार धर्म-कर्म करती हुई अपने पतिकी परम प्रिय हो गयी। कहने वाले क्या ख़ूब कह गये हैं, कि अच्छी स्त्री धर्म-कार्यकी सहायिका होती है; बुरे दिनोंमें किसी-न-किसी तरह दिन काट लेती है; मित्रके समान विश्वास-पात्र होती है; हित करनेमें भगिनीके समान होती है, लज्जा करनेमें पुत्रवधूके समान बन जाती है; व्याधि और विपद्के समय माताके समान होजाती है, और शय्याप्रान्तमें कामिनी बन जाती है। सच पूछो, तो तीनों लोकमें सुशीला भार्याके समान पुरुषका कोई बन्धु नहीं है। इस प्रकार धनकी वृद्धि होनेपर सेठने बहुतसे दास, दासी, गाय भैंस और घोड़े रखे। सब लोग आनन्दसे खाने-पीने और मौज़ें मारने लगे। वास्तवमें धनका सदुपयोग यही है, कि उसे ख़ूब खाने-पीने और खिलाने-पिलानेमें ख़र्च करे। मेघ पृथ्वीको जल प्रदान करता है, इसी-से सदा ऊँचेपर रहता है और समुद्र केवल जल जमा किये रहता है, इसीसे वह नीचे पड़ा हुआ है। इसमें तो कोई शक नहीं, कि जिसका विधाता वाम होता है, वही निर्धन होता है। तो भी जो धन रहते हुए खाने-खिलानेमें नहीं ख़र्च करता, उसे तो और भी अभागा समझना चाहिए। जो धनी होता हुआ भी कृपण हो, उसके पास कोई किस लिये आयेगा?

किंशुकके वृक्षमें फल लदे हों, तो भी सुआ उसके पास जाकर क्या लाभ उठायेगा? वह कभी उसे खानेको कुछ नहीं देसकता।

इसी प्रकार सेठके दिन बड़े सुखसे कटने लगे। उसका पुत्र प्रियङ्कर भी सुखकी गोदमें पलता हुआ बड़ा होने लगा। धीरे-धीरे वह आठ वर्षका हो गया। सेठने अच्छा दिन देख-कर उसे पढ़नेके लिये पाठशालामें भेजा। उस अवसरपर सेठने अपने समस्त हित-मित्रोंको अपने घर बुलाकर खिलाने-पिलाने का प्रबन्ध किया। उस समय प्रियश्रीने अपने स्वामीसे कहा,—"मेरी बहनोंने मेरे भाईके विवाहके अवसर पर मेरी दुर्दशाको देख, बड़े ताने मारे थे और मेरा बड़ा अपमान किया था। मेरे पीहरवालोंने भी मेरा कम अनादर नहीं किया था। इसलिये आप मेरे माता-पिता भाई-बहनोंको भी जरूर यहाँ बुलवाइये और उनको वस्त्रादिक देकर सम्मानित कीजिये।"

यह सुन सेठने सोचा,—"अहा! मेरी यह स्त्री सचमुच बड़ी सुशीला और भाग्यवती है। इसीसे वह अपना अपमान करनेवालोंको भी न्यौता देना चाहती है। ऐसी पत्नी बड़े पुण्योंसे ही प्राप्त होती है। जो सती, सुरूपवती, विनयी, प्रेमार्द्रहृदया, सरलस्वभावा और सदाचारके विचारमें लीन रहने वाली हो। इसके विपरीत क्रोधी, हठीली, कलहकारिणी, काली-कलूटी, घरका भेद औरोंसे कहनेवाली, सदा आलस्यमें पड़ी रहनेवाली, पतिके पहलेही पेट-भर खा लेनेवाली, गाली बकनेवाली, लज्जाहीना, चोरनी, घरके बाहर घूमनेवाली, गुण-

हीना, दांत किटकिटानेवाली, मैले-कुचेले हाथ-पैरोंवाली, कृपण और सदा पराये घर जाकर बैठनेवाली स्त्री बड़ी ही दुष्ट होती है। ऐसी स्त्री पूर्व-जन्मके पापके ही फलसे मिलती है।"

मन-ही-मन ऐसा विचारकर सेठने कुछ कहनाही चाहा था, कि प्रियश्री बोल उठो,—"स्वामी! उन धनके मदमें चूर रहने-वालोंको पुण्यका यह फल भी दिखला देना चाहिये!"

सेठने कहा,—"प्यारी! वे धनके मदमें चूर हैं तो रहने दो। हम उन्हें यहाँ बुलाकर उनका आदर क्यों करें? अपने साथ जो जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। जो अपने ऊपर हँसे, उसपर आप भी हँसना चाहिये; क्योंकि वेश्याने शुकके पंख तोड़ डाले थे, इसलिये शुकने भी उसका सिर मूँड लिया था।"

यह सुन प्रियश्रीने कहा,—"हे स्वामी! जो अपनी बुराई करे, उसकी भलाई ही करनी चाहिये। यही उत्तम जनोंका लक्षण है। इस संसारमें कृतघ्न और नीच पुरुष तो बहुत देखनेमें आते हैं; पर बुराई करनेवालेके साथ भलाई करनेवाले बहुत कम नज़र आते हैं।"

अपनी स्त्रीकी यह बात सुन सेठने अपने साले ससुरों और साथियोंको बुलानेके लिये आदमी भेज दिया। वह आदमी जब वहाँ पहुँचा, तब उसने देखा, कि वहाँ तो सब लोग अभिमानमें चूर हैं। फिर जब उसने अपने मालिककी ओरसे निमन्त्रण दिया, तब प्रियश्रीके भाई आदि कहने लगे, कि जन्मसे आजतक

तो कभी वहाँसे न्यौता नहीं आया था, आज क्या बात हुई ?

सेठके आदमियोंने कहा,—"सेठजीके लड़केको खड़िया छुलायी गयी है। इसी लिये उन्होंने अपने तमाम हित-मित्रोंको न्यौता देकर बुलाया है। इसी लिये आप लोगोंको भी बुलाहट है।"

यह सुन, उन लोगोंने कहा,—"हम लोगोंके आनेकी आशा छोड़ दीजिये। हम लोग नहीं जा सकते।" सेठके नौकरोंने उन लोगोंसे कितना ही आग्रह किया; पर उन्होंने जाना स्वीकार नहीं किया। अन्तमें जब इधरसे बड़ी हठ हुई, तब उन लोगोंने बड़े तमक-तावसे कहा,—"जहाँ अन्न, शाक, घी, दूध, दही, शक्कर और पान तक नहीं मिले, वहाँ भला और क्या खानेको मिलेगा, जो हम वहाँ जायें ? वह तो आप ही दरिद्र है।"

लाचार सेठके आदमियोंने लौटकर वहाँका समाचार ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। प्रियश्रीने भी यह सब हाल सुना। यह सुन प्रियश्रीने कहा,—"स्वामी ! आप मेरी बहनोंको खूब आदर मानके साथ बुलवाइये; क्योंकि बिना अपने नाते-गोतोंके कोई उत्सव अच्छा नहीं मालूम होता। कहावत है, कि वृक्षोंसे सरोवर, स्त्रियोंसे घर, मन्त्रियोंसे राज्य और स्वजनोंसे धर्म-कर्मका महोत्सव शोभायमान होता है।"

स्त्रीकी यह प्रबल प्रेरणा देख, सेठने फिर अपने ससुराल वालोंको बुलानेके लिये आदमी भेजा। इस बार उन उनलोगोंने बात मानली। लाख ही, तोभी नातेदारोंकी बात माननीही पड़ती है।

प्रियश्रीकी सब बहनें खूब बन-ठनकर बड़े ठाट-बाटसे आयीं; हाँ, उसके भाई मारे शर्मके नहीं आये। प्रियश्रीने बड़े आदरके साथ अपनी बहनोंका स्वागत-सत्कार किया। सच पूछिये तो शक्कर, अमृत या दूधमें ही मिठास नहीं है, मानपूर्वक साग भाजी खानेमें भी अमृतका स्वाद आ जाता है। कहावत है, कि पानीका रस शीतलता है, पराये घर भोजनका रस आदर है, स्त्रियोंका रस अनुकूलता है; मित्रोंका रस सुन्दर वचन है।

कई दिन इसी तरह स्वागत-सत्कारमें कट गये। उत्सव बड़ी धूम-धामसे समाप्त हुआ। बहनोंको प्रियश्रीने वस्त्राभरण और अलङ्कार आदि देकर सम्मानित किया। यह देख, वे सब आपसमें कहने लगीं,—"भई! हमारी यह बहन तो बड़ी गम्भीर और चतुर है। इसने खूब हम लोगोंका सत्कार किया। सच है, सभी आदमी एक से नहीं होते। हम लोगोंने उस दिन इसका कैसा अपमान किया था। इसपर कितने ताने तिश्ने छोड़े थे। यह हम लोगोंकी बहुत बड़ी बेजा थी।"

इस तरह मन-ही-मन पछताती हुई उन बहनोंने प्रियश्रीको बुलाकर क्षमा माँगी। यह सुनकर प्रियश्रीने कहा,—"प्यारी बहनों! इस सम्बन्धमें मैं तुम्हारा कोई दोष नहीं समझती। वह तो मेरे पूर्वजन्ममें किये हुए पापोंका फल था। जो प्राणी धनका गर्व करता है,वह इस जन्म और अगले जन्ममें भी अवश्य दरिद्र होता है। इस लिये न तो धन पाकर अभिमान करना चाहिये, न निर्धन होनेपर अफ़सोस करना चाहिये;

क्योंकि ख़ालीको भरे और भरेको ख़ाली करते विधाताको देर नहीं लगती। लक्ष्मी तो पानीकी तरङ्गके समान चञ्चल है। संगम आसमानमें उड़नेवाले बादलकी तरह है और यौवन सेमलकी रुई है। इन तीनोंके उड़ते क्या देर लगती है?"

इसके बाद उसकी बहनें हर तरहसे आदर-सत्कार पाकर अपने-अपने घर चली गयीं।

छठाँ परिच्छेद

क़ैदमें।

इधर ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, त्यों-त्यों प्रियङ्कर निरन्तर उद्योग और विनय-पूर्वक अच्छे-अच्छे पण्डितोंसे शास्त्रोंका अध्ययन करने लगा। पण्डित भी उसे खूब मन लगाकर पढ़ाते थे। कहावत है, कि विनयसे विद्या आती है, अथवा धन खर्च करनेसे विद्या सीखी जाती है अथवा विद्या देकर विद्या सीखनेमें आती है। इसके सिवा विद्या प्राप्त होनेका और कोई उपाय नहीं है।

मनुष्यको चाहिये, कि प्रथम अवस्थामें चाहे जैसे हो वैसे विद्या प्राप्त करनेकी चेष्टा करे। दूसरी अवस्थामें धन पैदा करे। तीसरी अवस्थामें धर्मका संग्रह करे।

सब कुछ सीखनेके बाद प्रियङ्कर अपने गुरुसे धर्म-शास्त्र पढ़ने लगा। गुरु भी उसके विनयादि गुणोंसे सन्तुष्ट होकर उसे बड़े प्रेमसे पढ़ाने लगे। कहा भी है, कि विनयसे विद्या सिद्ध होती है, विनयसे वित्त होता है, विनतसे सब कार्य सिद्ध होते हैं, विनयसे धर्म और यश प्राप्त होते हैं, विनयसे सुबुद्धि प्राप्त होती है और शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। जो माता-पिता

लड़कपनमें अपने पुत्रोंको पढ़ाते हैं, वेही सच्चे माँ-बापका काम करते हैं। कहते हैं, कि रूप और यौवनसे सम्पन्न और अच्छे कुलमें उत्पन्न होनेपर भी मनुष्य विद्या विहीन होनेसे वैसे ही नहीं अच्छा लगता, जैसे विना गन्धके किंशुकका फूल। पण्डितोंमें सब गुण होते हैं। मूर्खोंमें केवल दोष ही भरे होते हैं। इसी लिये एक गुणीकी बराबरी हज़ारों मूर्ख भी नहीं कर सकते। विद्या ही मनुष्यका रमणीय रूप है. यही छिपा ख़ज़ाना है, यही भोग और यशको देनेवाली है, यह सबसे बड़ी चीज़ है। परदेशमें यह मित्रका काम देती है। यह परम देवता है। राज दरबारमें भी इसकी पूजा होती है। जहाँ धनकी गुजर नहीं है, वहाँ विद्या पूजा पाती है। इस लिये विद्या विहीन पुरुषको पशुही समझना चाहिये।

विद्याके प्रतापसे प्रिङ्करने भली भाँति धर्म-शास्त्रका अध्ययन किया, जिससे मिथ्यात्वका नाश होकर उसे सम्यक्त्व प्राप्त हुआ। कहा है, कि मिथ्यात्व बड़ा भारी अन्धकार है, यह घोर शत्रु है। विष तो एक ही जन्ममें दुख देता है; पर मिथ्यात्व हज़ारों जन्म तक दुख देता रहता है। इसका कोई इलाजभी नहीं है। सम्यक्त्व व्रत-रूपी वृक्षका मूल है, पुण्य नगरका द्वार है; मोक्षमहलकी नींव है और सर्व सम्पत्तियोंका आकर है। दान, शील, तप, पूजा, तीर्थ-यात्रा, परम दया, सुश्रावकत्व और व्रत-पालन यह सब यदि सम्यक्त्व-पूर्वक किया जाये, तो बड़ा भारी फल मिलता है।

इस प्रकार प्रियङ्कर सम्यक्त्व, रत्नत्रय, नवतत्त्व और व्रत आदिको स्वीकार कर बड़ा पक्का श्रावक हो गया।

एक दिन गुरु महाराजने कहा,—"पुत्र! जब तक जवानी रहे, तभी तक धर्म-संग्रह करलेना चाहिये; क्योंकि बुढ़ापा आनेपर जब सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, तब धर्माराधन कहाँसे हो सकता है?"

उस दिनसे प्रियङ्कर नित्यही प्रतिक्रमण, देवपूजा, प्रत्याख्यान, दया और दान आदि करने लगा। साथही साथ जैन-धर्मानुसार नवों तत्त्वोंका हृदयमें चिन्तनभी करने लगा। उसकी ऐसी धर्म-श्रद्धा देख गुरु महाराज बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे उपसर्ग-हर-स्तोत्रका उपदेश किया और कहा,—"पुत्र! तुम नित्य प्रातः काल उठकर पवित्र होकर एकान्तमें इस स्तोत्रका पाठ किया करना। इस स्तुतिमें श्रीभद्रबाहु श्रुतकेवलीने महामन्त्र गुप्त कर रखा है। इसी लिये इसके पठसे धरणेन्द्र, पद्मावती और वैरुट्या आदि प्रसन्न होकर सहायता करते हैं। इसका निरन्तर पाठ करनेसे सब कार्य सिद्ध होते हैं। इसका स्मरण करते ही दुष्टग्रह, भूत-प्रेत, पिशाच, शाकिनी, डाकिनी, महामारी, ईति, भीति, रोग, शोक, जल-प्लावन, जलाभाव, अग्नि-उपद्रव, दुष्टज्वर, विषधर, चोर, राज, तथा संग्राम इत्यादिके भय दूरहो जाते हैं। इसके प्रतापसे सुखी सन्तान और समृद्धिका संयोग देखनेमें आता है। इसलिये पुत्र! तुम सदा इस स्तोत्रका पाठ किया करना। किसी प्रकारका दुःख-कष्ट आ पड़े तो इसका स्मरण करना।"

गुरु महाराजका यह उपदेश सुनकर प्रियङ्करने उसी दिनसे उपसर्ग-हर-स्तोत्रका पाठ करना शुरू किया। वह प्रतिदिन सवेरे उठकर शौच आदिसे निवृत्त होकर इसका पाठ करता। यदि किसी दिन इस नियममें भङ्ग हो जाता, तो उस दिनको वह पूजा-पाठमें ही बिता देता था। इस प्रकार लगातार स्तवपाठ करनेसे वह उसके लिये सिद्धि मन्त्रसा बन गया।

एक दिन प्रियंकरने अपने पिताके पास पहुँच, हाथ जोड़कर कहा,—"पिताजी! अब आप बनज-व्यापारके झंझटोंसे अलग होकर केवल धर्म-चर्चामेंही जीवन बिताइये। उत्तराध्यनसूत्रमें कहा हुआ है, कि जो रातें बीत जाती हैं, वे फिर नहीं मिलतीं; पर जो रात धर्म-चर्चामें बीतती है, वही सफल है। पिताजी! अब मैं आपकी कृपासे सारा कारोबार अकेलेही चला ले सकता हूँ। लोग कहते हैं, कि जो पुत्र पढ़-लिखकर विद्वान न हुआ और माता, पिता, तथा देवता-गुरुकी भक्ति करने वाला न हुआ, उसके जन्म लेनेसे कोई फल नहीं हुआ। ऐसी गाय किस कामकी जो न दूध दे, न बच्चा दे? पुत्र उसेही कहना चाहिये, जो घर-गृहस्थीका भार अपने ऊपर लेकर अपने पिताको चिन्ता मुक्त करे। कहावत है, कि एकही सुपुत्रसे सिंहिनी निर्भय होकर सोती है और दस पुत्र रहते हुएभी गधी बोझाही ढोती-ढोती मरती है। हरिनीके बहुतसे पुत्र होते हुएभी किस कामके, यदि वे उसके कुछ काम नहीं आते? बनमें जब आग लगती है और हरिनीको अपनी ही जान बचानी मुश्किल नज़र आती है, तब

ये लड़के भी उसके लिए बोझही बन जाते हैं ; पर मतवाले हाथियोंका मस्तक विदीर्ण करने वाले एकही पुत्रके बल पर सिंहिनी गर्जना करती है।"

पुत्रकी इन बातोंको सेठने अपने ध्यानमें रखा और शीघ्रही उसको कारबार सौंप देनेका इरादा किया।

एक दिन सेठने प्रियंकरको श्रीवास नामक ग्राममें रुपया वसूल करलानेके लिये भेजा। वह ज्योंही रुपया लेकर लौटा, त्योंही भीलोंने उसे पकड़ लिया और सन्ध्याके समय श्रीपर्वतपर बने हुए क़िलेमें लाकर सीमा-प्रान्तके राजाके हाथमें उसे सौंप दिया। राजाने उसे क़ैदख़ानेमें भिजवा दिया। बेचारा निरप-राध क़ैद कर लिया गया।

इधर थोड़ी रात बीत जानेपर भी जब प्रियंकर घर न लौटा, तब उसके माता-पिता बड़ी चिन्तामें पड़े और रो-रोकर कहने लगे,—"हा पुत्र! तुमको हमने पासके ही ग्राममें भेजा था, फिर तुम कहाँ अटक गये, जो अभी तक घर नहीं आये? क्या किसीने तुम्हें रास्तेमें ही पकड़ लिया? शीघ्र आकर अपना प्यारा-प्यारा मुखड़ा हमें दिखा जाओ। तुम्हें देखे बिना हमारी जान घबरा रही है। अबके तुम घर आ जाओ, तो हम फिर कभी तुम्हें बाहर नहीं जाने देंगे। पुत्र प्रियंकर! तुम हमारे इकलौते लड़के हो। बड़े कष्टोंसे हमने तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया है। हम तुम्हें अपनी जानसे भी बढ़कर मानते हैं। हमारे जीवनको आनन्द देने वाले एक मात्र तुम्हीं हो। क्या अब हम तुम्हें नहीं देख पायेंगे?"

इस प्रकार अपने पुत्रकी एक-एक बातको याद कर दोनों स्त्री-पुरुष रोने लगे। सच है, और-और दुःखतो किसी तरह सह लिये जाते हैं; पर अपने प्यारेका वियोग तो मरने तक कष्ट देता रहता है। इसीसे रह-रहकर वे कह उठते थे,—"हाय! आज पुत्रके बिना हमारा घर कैसा सूना दिखाई देता है। सच है, जिसके पुत्र नहीं है, उसका घर स्मशानके समान है। बिना पुत्र-वालेका घर सूना होता है, बिना मित्रके दिशाएँ सूनी दीखती हैं मूर्खका हृदय शून्य होता है और दरिद्रको तो चारों ओर सब कुछ सूनाही सूना है।"

वे लोग इसी तरह शोक-सागरमें डूबे हुए थे, इसी समय किसीने सेठके पास आकर कहा,—"सेठजी! तुम्हारे पुत्रको तो भील पकड़कर श्रीपर्वतपर ले गये हैं।"

यह समाचार सुनकर सेठ और सेठानीको बड़ा दुःख हुआ। वे विशेष प्रकारसे नमस्कार-मन्त्र और उपसर्गहर-स्तोत्रका पाठ करते हुए तरह-तरहके धर्म-कार्य करने लगे। कहा हुआ है, कि वनमें, संग्राममें, शत्रुओंके बीचमें, जलमें, आगमें, महासमुद्रमें, पर्वतपर, सोयेहुए रहनेपर, बेहोशीकी हालतमें, या और किसी विषम स्थितिमें पड़नेपर पूर्वकृत पुण्यही मनुष्यके काम आते हैं।

इसी समय पासदत्तको देवताकी कही हुई बात याद आ गई। बस दूसरे दिन सवेरेही वह कपूर, कस्तूरी, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ लिये हुए उसी आम्रवृक्षके पास आ पहुँचा। ज्योंही उसने धूप जलाया, त्योंही देवताने प्रकट होकर कहा,—"बोलो, क्या चाहते हो?"

सेठने कहा,—"मेरा प्यारा पुत्र प्रियंकर राज्य पायेगा, ऐसा आपने कहा था; पर आज तो उसका उलटाही हो गया। वह न जाने कहाँ क़ैद है। हम लोग उसे खोजते-खोजते हैरान हैं। दैवी वाणी तो कभी झूठ नहीं हो सकती; क्योंकि महापुरुषोंकी बात दुनिया उलट जाने परभी नहीं उलटती। अगस्त्य ऋषिके वचनसे बधा हुआ विन्ध्याचल आजतक फिर बढ़ने नहीं पाया। इसलिये इस संकटमें हमें आपकी ही शरण है।"

यह सुन, देवने कहा,—"सेठजी! आप चिन्ता न करें। आपका पुत्र आजके पाँचवें दिन एक राजकुमारीसे व्याह करके आयेगा।"
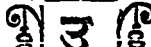
देवताके मुँहसे ऐसी बात सुन, सेठ पासदत्तको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह मारे ख़ुशीके फूला हुआ घर गया। उसके मुँहसे यह हाल सुन, सेठानीको भी बड़ा आनन्द हुआ। दोनों फिर बड़ी तत्परताके साथ धर्म-कार्य करने लगे।

सातवाँ परिच्छेद

विवाह ।
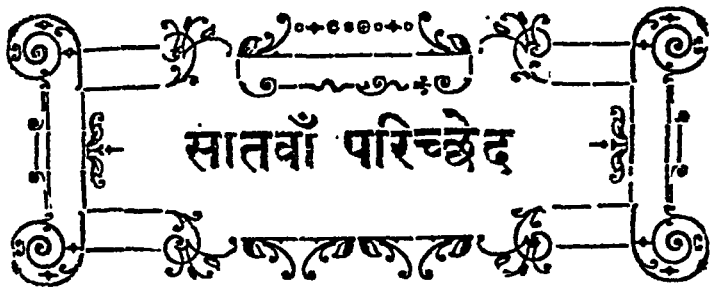
उधर श्रीपर्वतपर क़ैदीकी हालतमें पड़े हुए प्रियंकरको भीलोंके राजाने अपने पास बुलाकर पूछा,—"तुम कौन हो ?"

प्रियंकरने कहा,—"मैं अशोकपुरका रहनेवाला, सेठपासदत्तका बेटा प्रियंकर हूँ। मैं पासहीके एक गाँवमें वसूलीके कामके लिये आया हुआ था। वहाँसे लौटते समय आपके आदमियोंने मुझे गिरफ्तार कर लिया और यहाँ पकड़ लाये। मैं क्यों पकड़ा गया हूँ, इसका कोई कारण मेरी समझमें नहीं आता।"

यह सुन राजाने कहा,—"अशोकपुरका राजा अशोकचन्द्र मेरा शत्रु है। इसलिये मैं वहाँके सभी लोगोंको अपना शत्रु ही समझता हूँ। मेरे आदमियोंने उस राजाके मन्त्रीके लड़केको पकड़नेके लिये रास्ता रोका था। उसके बदले तुम्हीं हाथमें आगये !"

प्रियङ्करने कहा,—"राजन्! मुझ ग़रीबको क़ैदकर रखनेसे आपको क्या लाभ होगा ? एकके अपराधके लिये दूसरेको फाँसी

देना तो कोई इन्साफ़की बात नहीं है। यहतो वही मसल हुई कि रावणने सीता हरी, बाँधा गया समुद्र !"

राजाने कहा,—"दुष्टोंके पास बसनेवाले निरपराधीभी दण्ड ही पाते हैं। देखलो, खटमलके साथ होनेसे खटियाके पायेपरभी मार पड़ती है।"

प्रियंकरने कहा,—"तो भी राजाका धर्म यही है, कि उचितानुचितका विचार करे।"

राजाने कहा,—"अच्छा, यदि तुम मेरी एक बात मानो, तो मैं तुम्हें छोड़ दूँ।"

प्रियंकरने कहा,—"कहिये।"

राजाने कहा,—"तुम मेरे आदमियोंको अपने घरमें लेजाकर छिपा रखो और अपने यहाँके राजाके लड़के और मन्त्रीके लड़केको बाँधकर मेरे पास लेआओ। बस, मैं अपने दिलका बुख़ार निकाल लूँगा।"

प्रियंकरने मन-ही-मन सोचकर कहा,—"राजन्! मुझसे ऐसा अधर्म नहीं किया जायेगा। यह पूरी धोखेबाज़ी, राजद्रोह और अधर्म है। चाहे जान चली जाये; पर अधर्म नहीं करना चाहिये और दम निकलता रहे, तो भी धर्मका काम करके मरना चाहिये। इसके सिवा यहभी कहा हुआ है, कि जो लोग देशविरुद्ध, ग्राम-विरुद्ध, और नगर-विरुद्ध कार्य करते हैं वे इस लोकमेंभी दुःख पाते-हैं और परलोकमें भी।"

प्रियंकरकी ये नीति-भरी बातें सुन, राजाने क्रोधके साथ

अपने सेवकोंको हुक्म दिया, कि इस बनियेके बेटेको फिर क़ैदख़ानेमें डाल दो ।

बेचारा फिर क़ैदख़ानेमें डाल दिया गया। वहाँ पहुँचकर वह फिर एकाग्र-चित्तसे उपसर्ग-हर स्तोत्रका पाठ करने लगा।

इसी समय दिव्य प्रभावसे राजाके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस बनियेके बेटेको व्यर्थ अटका रखनेसे क्या फ़ायदा है? इसी बीच राजसभामें एक विद्यासिद्ध ज्ञानी पुरुष आ पहुँचे। राजाने उन्हें बड़े आदर-सत्कारसे बैठाया। कुशल-प्रश्न पूछनेपर उन ज्ञानी पुरुषने कहा,—"राजाओंकी सौम्यदृष्टिसे, प्रजाओंके हित वाक्यसे और आप्तजनोंके हृदयके वात्सल्यसे मैं निरन्तर सुखीही रहता हूँ।"

फिर राजाने पूछा,—"प्रभो! आप क्या-क्या जानते हैं?"

उन्होंने कहा,—"मैं जीना, मरना, जाना, आना, रोग, योग; धन, क्लेश, सुख, दुःख और शुभ, अशुभ सब कुछ जान सकता हूँ।

राजाने कहा,—"अच्छा, तो यह बतलाइये, कि मेरा शत्रु अशोकचन्द्र कब मरेगा?"

सिद्धने कहा,—"यह बात मैं एकान्तमें कहूँगा।"

राजाने कहा,—"यहाँ जितने आदमी बैठे हैं, सभी मेरे अपनेही निजी आदमी हैं, इसलिये आप निस्सन्देह यहीं अपनी बात कह डालिये।"

राजा प्रियङ्कर

इस बनियेके बेटेको फिर क़ैदख़ानेमें डाल दो। पृष्ठ ४४

सिद्धने कहा,—"गुप्त बात छः कानोंमें पहुँच जानेसे गुप्त नहीं रहती। चार कानोंतक रहे, तो गुप्त रहभी सकती है। दो कानोंकी बातका पता तो ब्रह्माको भी नहीं लगता।"

यह कह, उस सिद्धपुरुषने राजाके कानके पास मुँह लेजाकर धीरेसे राजा अशोकचन्द्रके मरनेका समय बतला दिया। यह सुन, राजाने प्रकटरूपसे पूछा,—"उसके मरनेपर उसका कौन लड़का गद्दीपर बैठेगा?"

क्षण-भरतक ध्यान लगाकर सिद्धने कहा,—"राजन्! उसके किसी लड़केको उसका राज्य नहीं मिलेगा। यही नहीं, उसके गोत्रके भी किसी आदमीको उसका राज्य नहीं मिलने का। उसका राज्य तो उसी प्रियंकर नामक वणिक पुत्रको मिलने वाला है, जिसे तुमने क़ैद्कर रखा है। उसे स्वयं देवता राज गद्दीपर बैठायेंगे।"

यह सुन, राजाने कहा,—"महात्माजी! आप यह क्या ऊट-पटाङ्ग बातें कह रहे हैं? कहाँ वह राजा और कहाँ वह बनियेका बेटा! उसका राज्य इसे क्योंकर मिल सकता है? इस निर्धन और निकम्मे वणिकपुत्रको कोई जानता भी न होगा। जिसको राज्य प्राप्ति होनेवाली होती है, उसका नामतो जग-जाहिर हो जाता है। बड़े पुण्योंसे किसीको राज्य मिलता है। कहते हैं, कि जिसका पुण्य प्रबल होता है, उसका नाम नल, पाण्डव और रामचन्द्रकी तरह प्रसिद्ध हो जाता है और घर-घर उसकी कीर्त्ति गायी जाती है।"

सिद्धपुरुषने कहा,—"राजन्! मेरा ज्ञान झूठा नहीं हो सकता। वह राज्य इसी वणिक्पुत्रको प्राप्त होगा, इसमें ज़राभी संदेह नहीं है। अगर तुम्हें मेरे ज्ञानमें संदेह हो तो कहो, जो कुछ तुमने कल खाया है, वहभी मैं बतला देसकता हूँ।"

राजाने कहा,—"अच्छा, बतलाइये।"

सिद्धने कहा,—"आपने कल घी और खाँड़ मिली मिठाई, पाँच पेड़े, मगदलके लड्डू आदि खाकर अन्तमें पान खाये थे।"

यह सुन, राजाको उस सिद्धपर पूरा विश्वास हो गया। इतनेमें किसी सभासद्ने कहा,—"स्वामी! चूड़ामणिशास्त्रके ज्ञाता बीती हुई बातें बतला सकते हैं; पर होनेवाली बात नहीं बतला सकते।"

इसपर राजाने फिर पूछा,—"अच्छा, आप यहतो बतलाइये, कि आज मैं क्या-क्या खाऊँगा?"

सिद्धने कहा,—"आज आप सन्ध्यातक कुछ थोड़ासा जल-पान करेंगे। दिनभर कुछभी न खायेंगे।"

राजाने कहा,—"झूठी बात है। मैं आज बीमार थोड़ेही हूँ जो दिन-भर भूखा रहूँगा?"

सिद्धने कहा,—"ख़ैर, अब मैं अधिक क्या कहूँ? इतना कहना काफ़ी समझें, कि आगामी माघ मासकी शुक्ल पूर्णिमाके दिन पुष्यनक्षत्रमें प्रियङ्कर राजा होगा। इस बातमें ज़राभी सन्देह मत मानें।"

इसके बाद वह सिद्धपुरुष चुपहो गये और राजाने प्रियंकरको क़ैदख़ानेसे बाहर निकलवाकर उसे अच्छे वस्त्र पहनाये, बढ़िया

खाना खिलाया और उसे स्नेहपूर्वक अपनेही पास बुलाकर बैठाया। सच है, भाग्यवान्‌को हर जगह सुखही मिलता है और दुखीको हर जगह दुःख-ही-दुःख दिखाई देता है।"

इसके बाद राजा बड़ी देरतक उस सिद्धपुरुषसे बातें करते रहे। जब सभा-विसर्जन करनेका समय हुआ, तब सबको विदाकर अपने महलोंमें चले गये। स्नानादि करनेके अनन्तर ज्योंही वे भोजन करने चले, त्योंही उनके सिरमें बड़े ज़ोरका दर्द पैदा हुआ और वे बड़े कष्टसे कराहने लगे। कितनी बार भोजन करनेके लिये बुलावा आया; पर वे न जा सके। दर्दसे छटपटाते हुए राजाको पड़े-पड़े नींद आगयी। उस समयके सोये हुए वे एकदम साँझको उठे। उस समयभी सिरका दर्द छूटा नहीं था। इसी समय मन्त्रीने आकर कहा,—"महाराज! एकदम उपवास करना तो ठीक नहीं; क्योंकि ज्वरमें भी एकबारगी लंघन करना उचित नहीं। जितने गुण लंघन करनेमें हैं, उतनेही हलका भोजन करनेमें भी हैं। इसलिये इस समय आप थोड़ासा सौंफका पानी पी लीजिये। यह स्वादिष्ट, रोचक गात्रशोधक, शुष्क, नीरस, तिक्त और ज्वर नाशक है।"

राजाने मन्त्रीकी बात मानकर सौंफ़का पानी पी लिया। फिर वैद्यके बतलाये अनुसार उन्होंने इलायची खायी। इलायची कफ और वायुके विकारको दूर करती है और मुख तथा मस्तकको शुद्ध करती है।

दूसरे दिन राजाने उन सिद्धपुरुषको दरबारमें बुलाकर उन्हें

बहुतसा वस्त्राभरण दान किया और बड़े आदरके साथ कहा,—"हे सिद्धपुरुष! आपका कहना सोलह आने सच हुआ। इसके बाद उन्होंने मन्त्री आदिको बुलाकर कहा,—"अब मुझे इन सिद्ध-पुरुषकी बातोंमें कोई सन्देह नहीं रहा। अवश्यही प्रियंकरको अशोकपुरका राजसिंहासन प्राप्त होगा। अतएव यदि तुम सब लोगोंकी इच्छा हो, तो मैं अपनी प्यारी पुत्री वसुमतीका व्याह इसीके साथ कर दूँ। इसके साथ पहलेसेही नाता जुड़ जानेसे आगे चलकर बहुत लाभ होगा।—

राजाकी इस बातको सभीने पसन्द किया। इसके बाद दूसरेही दिन राजाने अपनी कन्याका विवाह प्रियंकरके साथ कर दिया।

व्याके दूसरेही दिन प्रियंकर अपनी प्यारी पत्नीके साथ अपने ख़ास कमरेमें बैठा हुआ सोचने लगा,—"यह सब उपसर्ग हर-स्तोत्रकाही प्रभाव है। कहा है, कि पुण्यके प्रतापसे विपत्तिमें भी सम्पत्ति मिल जाती है; शत्रुके घर मनोरमा स्त्री मिल जाती है और अपमानके स्थानमें मान मिलता है।"

इसके बाद राजाने अपनी लड़की और दामादको बहुतसा धन दहेजमें देकर विदा किया। वह जिस दिन अपने घरसे ग़ायब हुआ था, उसके ठीक पाँचवें दिन अपनी स्त्रीके साथ अपने घर चला आया। नई नवेली पुत्रवधू पाकर उसके माँ-बापको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने देखा, कि सचमुच देव-वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। प्रियंकर सचमुच पाँचवेंही दिन घर आ गया। बड़े आनन्दसे सबके दिन कटने लगे।

अब तो प्रियंकरने गृहस्थीका पूरा भार अपने ऊपर ले लिया और अपने पिताको सारे झगड़े-झंझटोंसे छुटकारा दे दिया। कहा भी है, कि—

"ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः, सा भार्या यत्र निर्वृत्तिः॥"

अर्थात्—वेही सच्चे पुत्र हैं, जो पिताके भक्त हों। यथार्थमें पिता भी वही है, जो पुत्रका पालन-पोषण करे। मित्र वही है, जिसपर पूरा विश्वास किया जासके। स्त्री वही है, जिसके पास जानेसे चित्तको शान्ति मिले।

शुभ शकुन।

एक दिन प्रियंकर देवगुरुका स्मरण कर, नमस्कार-मन्त्र और उपसर्ग-हर-स्तोत्र आदिका विशेष रूपसे ध्यान करनेके बाद सोने गया। रातके पिछले पहर उसने एक बड़ा विचित्र सपना देखा। बस वह घबराकर उठ बैठा और नमस्कार-मन्त्र पढ़ने लगा। कहा है, कि जिनशासनके सार-स्वरूप और चौदह पूर्वके उद्धार-रूप नमस्कार-मन्त्रको जिसने हृदयमें धारण कर रखा है, उसको संसारसे क्या भय है? यह मन्त्र मङ्गल दायक, विघ्न-विनाशक, शान्ति-विधायक, और स्मरण करतेही सुख देनेवाला है। नमस्कारके समान मन्त्र, शत्रुञ्जयके समान तीर्थ, गजेन्द्रस्थानमें उत्पन्न जलके समान जल जगत्में दुर्लभ है। यही सब बातें प्रियंकरके मनमें उठ रही थीं। फिर ज्योंही उसने सोनेका विचार किया, त्योंही उसे याद आया, कि 'विवेक-विलास' नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि अच्छा सपना देखकर फिर नहीं सोना चाहिये और दूसरे दिन सबेरे बड़े-बूढ़ों और गुरुके पास जाकर उसका हाल सुनाना चाहिये।

बुरा सपना देखने पर तुरत फिर सो रहना चाहिये और उसकी बात किसीसे नहीं करनी चाहिये।

दूसरे दिन सवेरे उठकर प्रियंकरने अपने सपनेका हाल अपने पितासे कहा,—"पिताजी! मैंने बड़ा विचित्र सपना देखा है। मैंने पहले देखा, कि मैंने अपने शरीरकी तमाम अँतड़ियाँ बाहर निकालकर सारे नगरको उनसे बाँध लिया है। फिर मैंने अपने शरीरको आगमें जलते देखा। जब लोगोंने पाणी डालकर आग ठंडी की, तब मेरी नींद खुली। मालूम नहीं, इस स्वप्नका क्या फल होगा?"

यह सुन पासदत्तने उसे त्रिविक्रम उपाध्यायके पास जाकर स्वप्न-फल पूछनेकी सलाह दी। प्रियंकरने पिताके आज्ञानुसार उपाध्यायके पास जाकर इस स्वप्नका फल पूछनेका विचार किया। कारण, पतिकी आज्ञामें सती स्त्रीको, स्वामीकी आज्ञामें सेवकको, गुरुकी आज्ञामें शिष्यको और पिताकी आज्ञामें पुत्रको कदापि संदेह नहीं करना चाहिये।

जब प्रियंकर उपाध्यायके घर पहुँचा, तब उसने उपाध्यायके पुत्रको कुछ पढ़ते हुए पाकर पूछा, कि उपाध्यायजी कहाँ गये हैं? उपाध्यायके चतुर पुत्रने कहा,—"जहाँ मुर्दे जी जाते है, मरे हुए लोग साँस लेते हैं, घरवालेही आपसमें लड़ते रहते हैं, वहीं गये हुए हैं।"

प्रियंकरने अपनी बुद्धिसे इसका अर्थ लगा लिया, कि वे लुहारके घर गये हैं। जब वह लुहारके घर पहुँचा, तब लुहारने

कहा, कि वे तो अभी अपनी तलवार पर सान चढ़वा कर घर गये हैं। लाचार प्रियंकर फिर उपाध्यायके घर आ पहुँचा। इस बार उसको उपाध्यायके छोटे लड़केसे मुलाकात हुई। उससे पूछनेपर उसने कहा,—"कि जहाँ जड़की ही सङ्गति हं, जहाँ कमलके ही साथ प्रीति देखनेमें आती है, जो उपकारी मेघोंका आधार है, वहीं मेरे पिता गये हुए हैं।"

उपाध्यायके पुत्रकी यह चतुराई देख, प्रियंकरने सोचा,—"मालूम होता है, कि उपाध्यायजी तालावपर नहाने गये हैं। यही सोचकर उसने पूछा,—"क्या वे तालावपर गये हैं?" प्रियंकरकी बुद्धिमानी देख उपाध्यायके पुत्रको भी बड़ा आनन्द हुआ। उसने हामी भरदी। तब प्रियंकर तालावपर पहुँचा। वहीं उसने अपने स्वप्नकी बात उपाध्यायको कह सुनायी। उपाध्यायने विचारा कि यह स्वप्न तो राज्य-प्राप्तिकी सूचना देनेवाला है। यह सोचकर उपाध्यायको मन-ही-मन बड़ा अचम्भा हुआ। वे प्रियंकरको साथ लिये हुए अपने घरकी ओर चले। इसी समय रास्तेमें कुछ स्त्रियाँ मिलीं, जिनके हाथमें अक्षत, चन्दन, पुष्प आदि मांगलिक द्रव्योंसे सजाये हुए थाल थे। यह देख पण्डितने सोचा, कि यह तो मानों वधाई देनेकेही लिये चली आ रही हैं। इतनेमें दो मनुष्य सिरपर लकड़ीका बोझ लिये आते दिखाई पड़े। यह शकुन भी राज्यलायक ही जान पड़ा। कहा जाता है, कि यदि नगरसे बाहर निकलते या भीतर प्रवेश करते समय लकड़ीका बोझ सिरपर लिये हुए

आदमी दिखाई दें, तो राज्यकी प्राप्ति होगी, ऐसा समझना चाहिये। थोड़ी दूर और जानेपर मद्यसे भरा हुआ पात्र दिखाई दिया। यह देख पण्डितने कहा,—"यह सगुनभी बड़ाही अच्छा है।"

प्रियंकरने कहा,—"इस पात्रमें क्या रखा है?"

पण्डितने कहा,—"इस पात्रमें मद, प्रमाद, कलह, निद्रा, प्राण-नाश और नरक-प्राप्तिका साधन मौजूद है।"

यह सुन प्रियंकरने कहा,—"जब इसमें इतनी बुराइयाँ भरी हैं, तब इसका सगुन क्यों अच्छा माना जाता है?"

पण्डितने कहा,—"शकुन शास्त्रके जाननेवाले पण्डितोंने मद्य को अच्छे शकुनमें माना है। वे लोग कन्या, साधु, राजा, मित्र, भैंस, दूब आदि मांगलिक द्रव्य तथा वीणा, मिट्टी, मणि, अक्षत, फल, छत्र, कमल, दीप, ध्वजा, वस्त्र, अलंकार, मद्य, मांस, पुष्प, आदि धातुएँ, मछली, घी, दही और भरा घड़ा दाहिनी ओरसे जाते देखना बहुत उत्तम बतलाते हैं।"

यह सुन, प्रियंकर बड़ा प्रसन्न हुआ और मन-ही-मन इन शकुनोंका विचार करता हुआ पण्डितके घर आया। वहाँ पहुँचनेपर पण्डितने अपनी सोमवती नामक कन्या उसके हाथों सौंप देनेकी इच्छा प्रकट की। यह सुन, प्रियंकरने कहा,—"पण्डितजी महाराज! इस बारेमें आप मेरे पिताजी से बातें कीजिये। मैं तो केवल सगुन विचरवानेके लिये आपके पास आया हूँ। इस लिये आप मुझसे ये बातें न कीजिये।

पण्डितने कहा,—"हे प्रियंकर! तुम घर जाकर अपने पिताको यहीं भेज दो, तो मैं उन्हींसे तुम्हारे स्वप्नका फल कह दूँगा।"

प्रियंकरने घर आकर अपने पितासे पण्डितकी बातें कह सुनायीं। सब सुनकर पासदत्त पण्डितके घर पहुँचा। स्वप्नका फल पूछनेपर पण्डितने कहा,—"सेठजी! इस स्वप्नसे तो यही फल निकलता है, कि तुम्हारा पुत्र अवश्यही इस नगरका राजा होगा। स्वप्नशास्त्रमें कहा है, कि यदि कोई मनुष्य यह सपना देखे, उसने अपनी आँतड़ियाँ बाहर निकालकर उन्हींसे सारे नगर या ग्रामको बाँध लिया है, तो वह निश्चयही उस नगर, ग्राम या देशका राजा होता है। इसके सिवा यदि स्वप्नमें आना आसन, शय्या, शरीर, वाहन या घर जलता दिखा दे, तो लक्ष्मी आती है। ख़ास करके यदि कोई प्रशान्त, धार्मिक, निरोगी और जितेन्द्रिय पुरुष ऐसा स्वप्न देखे, तो वह निश्चयही सत्य होता है। रातके चारों पहरोंमें देखे हुए स्वप्न क्रमसे एक वर्ष, छः महीने, तीन महीने और एक महीनेपर फल दिखलाते हैं।"

यह सुन सेठने मन-ही-मन विचार किया कि अब तो देवताकी बात सच हुआ चाहती है। यह सोच अतिशय आनन्दित हो सेठने कहा,—"पण्डितजी! ज्ञानी पुरुषोंकी बात निश्चय ही सत्य होती है, इसलिये आपकी बात ज़रूरही सच होगी।"

पण्डितने कहा,—"सेठजी! इसीलिये तो मैं अपनी कन्याका पुत्रकेविवाह तुम्हारे साथ करना चाहता हूँ।"

सेठने पण्डितकी बात स्वीकार कर ली। कुछ ही दिन बाद शुभलग्नमें पण्डितकी कन्या सोमवतीके साथ प्रियङ्करका विवाह होगया। पण्डितने भी अपने सामर्थ्यानुसार कन्याको धन-रत्न आदि दिये।

इस प्रकार प्रियंकरने अपनी दोनों पत्नियोंके साथ सुखसे जीवन बिताना आरम्भ किया। परन्तु धर्मका ध्यान उसने पल-भरके लिये नहीं छोड़ा। उसने अपनी दूसरी पत्नीको भी धर्म-कार्यमें अनुराग दिलाया और वह भी पूरा धार्मिक बन गया।

नवाँ परिच्छेद

तीसरा विवाह ।

सेठ पासदत्तके घरके पासही एक धनदत्त नामका करोड़पति सेठ रहता था। वह बड़ा ही उदार, दानी, गुणी और गुणग्राही था। उसकी कीर्त्ति चारों ओर फैली हुई थी। कहा भी है कि—

> "दानेन वर्द्धते कीर्त्ति-र्लक्ष्मीः पुण्येन वर्द्धते ।
> विनयेन पुनर्विद्या, गुणाः सर्वे विवेकतः ॥"

अर्थात्—दानसे कीर्त्ति बढ़ती है, पुण्यसे लक्ष्मी बढ़ती है, विनयसे विद्या बढती है और विवेकसे सभी गुणोंकी वृद्धि होती है।

सेठ धनदत्तकी स्त्रीका नाम धनश्री था। उसके गर्भसे उत्पन्न जिनदास और सोमदास नामके दो पुत्र और श्रीमती नामकी एक कन्या थी।

एक समयकी बात है, कि सेठ धनदत्तने नया मकान बनवानेकी इच्छा की। इसके लिये उस शुभ दिन, शुभमुहूर्त्तमें भूमिशोधन करवाके वास्तुशास्त्रकी विधिके अनुसार नींव

ढलवायी। इस सम्बन्धमें लिखा हुआ हैं, कि किसी देवमन्दिरके पास घर नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेसे दुःख होता है। चौराहेपर मकान बनवानेसे हानि होती है। धूर्त्त और राजाके मन्त्रीके घरके पास घर बनानेसे पुत्र और धनका नाश होता है। घरमें क्षीरवृक्षकी लकड़ी लगानेसे लक्ष्मीका नाश करती है, कण्टक-वृक्षको शत्रु कि ओरसे भयदायिनी होती है। मूर्ख, अधर्मी, पाखंडी, मतवालों, नपुसंकों, कोढ़ियों, शराबियों और चण्डालोंके पड़ोसमें भी घर नहीं बनवाना चाहिये। पहले और पिछले पहरके सिवा यदि दूसरे और तीसरेमें वृक्ष या ध्वजा आदिकी छाया घर पर पड़ती हो, तो निरन्तर दुःख देनेवाली होती है। द्रव्य और पुण्यको इच्छा रखनेवालोंको चाहिये कि पेड़ काट कर वहाँ रहनेका घर न बनवावें। कारण, वट-वृक्षको काटनेसे भूत-प्रेत सताते हैं; इमलीका पेड़ काटनेसे सन्तान नहीं जीती और यश तथा धनका नाश होता है। बुद्धिमान मनुष्योंको चाहिये, कि वृक्षरहित स्थानमें घर बनवावें। अपना भला चाहने वालोंको जैन-मन्दिरके पीछे, शिवमन्दिर की बगलमें और विष्णु-मन्दिरके अग्र-भागमें घर नहीं बनवाना चाहिये। जिनमन्दिरके पीछे सवा सौ हाथ तकके अन्दर बनवाया हुआ घर धन और जनका नाश करता है। ऐसाही शिव-मन्दिर आदिके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये। चूड़ामणि आदिके ग्रन्थोंमें इस विषयमें विस्तार-पूर्वक लिखा हुआ है।

अस्तु। कुछ दिनोंमें सेठका नया मकान तैयार हो गया।

शुभ मुहूर्त्तमें घरकी बायीं ओर देवालयकी स्थापना की गयी और नित्य पूजा-पाठ, स्वामी-वात्सल्य,दान-धर्म आदि होने लगे। उस घरमें रहते हुए तीनही दिन बीते कि चौथे दिन एक अद्भुत बात हो गयी। उस दिन रातको सेठ बड़े आनन्दसे घरमें सोया हुआ था। सवेरे उठकर उसने देखा, कि वह आँगनमें पलँग पर पड़ा हुआ है। यह देख, उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने दूसरे दिन रातको घरके अन्दर ख़ूब मजबूत किवाड़ बन्द करके शयन किया; पर उस दिनभी यही लीला हुई। यह देख, उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसने कितना पूजा-पाठ किया, धूप-दीप जलाया; पर तीसरे दिन फिर यही बात देखनेमें आयी। अबतो उसके घरका जो कोई प्राणी घरमें सोता, वही सवेरे बाहर आँगनमें पड़ा नज़र आने लगा। अबतो घर-भरके लोग डर गये। और सभी उस दिनसे आँगनमें ही सोने लगे। सेठने अपने मनमें विचार किया, कि अवश्यही यह सब किसी भूतप्रेतका काम है। यही सोचकर उसने एक मन्त्रिक को बुलवाकर यह हाल कह सुनाया। मन्त्र-वादी उपचार करने लगा; पर वह ज्यों-ज्यों उपचार करता, त्यों-त्यों वह भूत कुपित होकर भयङ्कर शब्द करने लगा। तब बड़े दुखित होकर सेठने सोचा, कि मैंने जो इस घरमें लाखों रुपये लगाये, वे सब पानीमेंही गये।

एक दिन वह इसी सोच-विचारमें पड़ा हुआ बैठा था। इसी समय उधरसे जाते हुए प्रियंकरने उसे सोचमें पड़ा देखकर पूछा, "सेठजी! आप इस समय इस प्रकार उदास क्यों दिखाई देते हैं?"

सेठने कहा,—"मैं इस समय बड़ी चिन्तामें पड़ गया हूँ। आप तो जानते ही हैं कि चिन्ता शरीरको जला देती है, रोग पैदा करती है। नींद और भूख हर लेती है।"

प्रियंकरने कहा,—"चिन्ता करनेसे क्या फ़ायदा है? जो कुछ विधिने ललाटमें लिख दिया है, वह तो भोगनाही पड़ता है। इसलिये धीर पुरुषोंको विपद्के समयभी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।"

यह सुन सेठने अपने घरका हाल कह सुनाया। सब सुनाकर अन्तमें कहा,—"यदि आपको इसका कोई उपाय मालूम हो, तो कृपाकर बतलाइये। आप हमारे सधर्मी और बन्धु हैं। इसीसे आपसे पूछता हूँ। कहा भी है, कि संसारमें गुणी बहुत होते हैं; किन्तु परोपकार करने वाले और पराये दुःखसे दुःखित होनेवाले मनुष्य बहुतही कम देखे जाते हैं।"

प्रियंकरने कहा,—"सेठजी! अभी तो मैं अपने कुछ घरेलू कामसे जा रहा हूँ। इसलिये आप थोड़ा धैर्य धारण करें।"

सेठने कहा,—"उत्तम पुरुष अपना काम छोड़कर दूसरोंका काम बनाते हैं। चन्द्रमा अपने कलङ्कको दूर करनेका विचार भी नहीं करता और सदा संसारको प्रकाश देता रहता है। कहते हैं, कि इस पृथ्वीको वृक्षों, पर्वतों और समुद्रोंका बोझ नहीं मालूम पड़ता; पर जो याचना करनेवाले मनुष्योंकी इच्छा पूरी करनेकी शक्ति रखते हुए भी उसे पूरा नहीं करते, उनके बोझसे दबी जाती है।"

यह सुन, प्रियङ्कर वहीं ठहर गया। पहले उसने घरको चारों ओरसे अच्छी तरह देख लिया। सब देख लेनेके बाद उसने कहा,—"सेठजी! आपने घर तो वास्तुशास्त्रकी विधिके अनुसार ही बनवाया है; परन्तु कारीगरोंकी भूलसे इसमें कुछ दोष रह गये हैं। इसके द्वारके ऊपरी चौकठपर मङ्गलके निमित्त जिन-बिम्बकी जगह यक्षकी मूर्त्ति बनादी गयी है। कहा है, कि अपना भला चाहनेवालोंको सदा अपने द्वारपर मङ्गलके निमित्त जिन-बिम्बकी स्थापना करनी चाहिये। शकटके आकारका घर अर्थात् आगेसे छोटा और पीछेसे बड़ा घर नहीं बनाना चाहिये। यह धन और सन्ततिका नाश करता है। आगेसे बहुत भड़कीला और पीछेसे एकदम तङ्ग मकान भी यश और कीर्त्तिका नाशक होता है। त्रिकोण भवनमें अग्निका भय होता है, विषम हो तो राजाका भय होता है। इसलिये अपनी सब तरहसे भलाई चाहनेवालोंको चारों ओरसे बराबर मकान बनवाना चाहिये।"

इसके बाद प्रियङ्करने उस मकानके दरवाज़े परसे यक्षकी मूर्त्ति हटवाकर जिनमूर्त्ति रखवायी और चैत्रमासकी-अट्ठाईके समय उस मकानके अन्दर श्रीपार्श्वनाथकी मूर्त्ति सिंहासनपर पधरा-कर, धूप-दीपसे उनकी पूजा कर नित्य वहाँ जाकर उपसर्गहर-स्तोत्रका पाठ करना आरम्भ किया।

आठवें दिन उस मकानमें रहनेवाला भूत बालक रोगीका रूप बनाये प्रियङ्करका ध्यान-भङ्ग करनेके लिये उसके पास आकर कहने लगा,—"हे दयालो! आप कृपाकर मेरी रक्षा करें। मैं

उस प्रेतनें हाथी, सिंह और साँपका रूप बनाकर डरवाना शुरू किया ; पर तो भी वह चलायमान नहीं हुआ। उलटे वह और मुल्तैदिके साथ उपसर्गहर स्तोत्रका पाठ करने लगा।

(पृष्ठ ६१)

बड़ाही दीन और मातृ-पितृ हीन हूँ, इसलिये दयाकर मुझे औषधादि देकर मेरी जान बचा लीजिये।"

परन्तु उसके बारबार रोने-गिड़गिड़ानेपर भी प्रियङ्करने अपना ध्यान नहीं टूटने दिया। तब उस प्रेतने हाथी, सिंह और साँप का रूप बनाकर डरवाना शुरू किया; पर तो भी वह चलायमान नहीं हुआ। उलटे वह और भी मुस्तैदीके साथ उपसर्गहर-स्तोत्रका पाठ करने लगा। अन्तमें इस स्तोत्रके प्रभावसे वह प्रेत डरकर वहाँसे भाग गया। उस दिनसे सेठ धनदत्त और उसके घरवाले बड़े सुखसे अपने मकानमें रहने लगे। उसके बाद वहाँ फिर किसी तरहका उपद्रव नहीं हुआ। सेठ धनदत्तने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री श्रीमतीका विवाह प्रियङ्करके साथ कर दिया। उसने बहुतसा धन दहेज़में दामादको दिया। श्रीमतीके साथ प्रियंकर नाना प्रकारके सुख भोगने लगा।

दसवाँ परिच्छेद

यक्ष और प्रियंकर।

उस घटनाके कुछही दिनों बाद राजाके मन्त्री हितकर को प्रियङ्कर द्वारा प्रेतके भगाये जानेकी बात मालूम हुई। कारण, चाहे कितनाही गुप्त क्यों न रखा जाये, परन्तु किया हुआ भला-बुरा काम जग-जाहिर होही जाता है। मन्त्रीने प्रियंकरको बड़ी ख़ातिरसे बुलाकर कहा,—"प्रियङ्कर! तुम बड़े ही भाग्यवान् हो। मैंने तुम्हारे करतबकी बात सुनी है। तुमने सचमुच परोपकार कर बड़ा अच्छा काम किया। वास्तवमें साधु पुरुषोंकी सारी विभूतियाँ परोपकारके ही लिये होती हैं। नदियाँ पराये उपकारकेही लिये बहती हैं; वृक्ष दूसरोंकेही लिये फलते हैं; गायें औरोंकोही अपना दूध पिला देती हैं। मेघ, सूर्य्य, वृक्ष, दानी और धर्मोपदेशक सभीपर समान दया दिखलाते हैं। कहते हैं, कि जन्मसेही साथ-साथ रहनेके कारण विन्ध्याचलपर हाथी की प्रीति होती है; सुगन्धकेही लोभसे भौंरेकी कमलपर प्रीति होती है; सम्बन्ध होनेहीके कारण चन्द्रमा और समुद्र एक दूसरे पर प्रेम प्रकट करते हैं; मेघमें जलकेही लोभसे चातकका

नेह होता है; इसप्रकार सभी प्राणी किसी-न-किसी स्वार्थसेही एक दूसरेके साथ बँधे हुए हैं; पर मोर और मेघका प्रेम एकदम निर्दोष और निष्कारण होता है। इसीतरह तुम्हारा स्नेहभी अकारण ही सब जीवोंपर पाया जाता है। इसीसे मैंने तुम्हें बुलवाया है, कि कुछ मेरा भी काम कर दो।"

प्रियङ्करने कहा,—"कहिये, यदि मुझसे हो सकेगा तो ज़रूर ही कर दूँगा।"

मन्त्रीने कहा,—"मेरी लड़की एक दिन अपनी सखियोंके साथ बाग़में टहलने गयी थी। उसी दिनसे उसपर न जाने किस शाकिनी, डाकिनी, भूत या प्रेतकी छाया पड़ गई है। मैंने बहुतेरा उपचार करवाया; पर किसीसे कुछ लाभ नहीं हुआ। जैसे दुर्ष्टोंसे कही हुई बात बेकारही जाती है, वैसेही मेरी सारी चेष्टायें विफल हो गयीं। मैंने कितने देवी-देवताओंकी मन्नत मानी; पर कुछ फल न मिला। बहुतेरे वैद्य देखकर कह गये कि उसे रोग है; पर कोई उसका रोग छुड़ा न सका। कितने योगी-यती भूत-प्रेतका दोष बतला गये; कितनेही ज्योतिषी ग्रहोंका फेर दिखला गये; पर किसीका किया कुछ न हुआ। बात असल यह है, कि—

> वैद्या वदन्ति कफ-पित्त-मरुत्प्रकोपम्
> ज्योतिर्विदो ग्रहकृतं प्रवदन्ति दोषम् ॥
> भूतोपसर्गमप मंत्रविदो वदन्ति,
> कर्मैव शुद्धमुनयोऽत्रवदन्तिनूनम् ॥"

अर्थात्--वैद्यको दिखलाओ तो वह वात, पित्त और कफकीही शिकायत बतलाता है; ज्योतिषी ग्रहका ही फेर बतलाता है; मन्त्रजाननेवाला भूत-प्रेत का ही फेर बतलाता है; परन्तु शुद्धचेता मुनिगण इस सम्बन्धमें कर्मों काही फेर बतलाते हैं।'

इस लिये मैं इस सङ्कटके समय क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता। और दिन तो वह कुछ अच्छी भी रहती है; पर अष्टमी और चौदसके दिन तो उसकी हालत बहुतही बिगड़ जाती है। इन दोनों दिनोंमें वह कुछभी खाती-पीती नहीं है, किसीसे बोलती तक नहीं, लाख पूछो; पर वह किसी बातका जवाब नहीं देती। इसीसे उसका ब्याह भी रुका हुआ है। अतएव हे प्रियंकर! तुम कृपाकर किसी उपायसे उसका यह दुःख दूर करो। इसके लिये तुम जितना धन माँगोगे, उतना मैं देसकता हूँ। मैं धनका लोभी नहीं हूँ। मैं यही समझता हूँ कि अपने और अपने बाल-बच्चोंके उपकारके लिये जो धन खर्च हो, वही सफल है।"

यह सुन, प्रियङ्करने कहा,—"हे मन्त्री महोदय! आप कृपाकर अगुरु, कर्पूर, कस्तूरी आदि धूपकी सामग्री, मँगवायें तो मैं कोइ उपाय करूँ। यदि आपकी कन्याका पुण्य प्रबल होगा, तो मेरा किया हुआ काम पूरा पड़ेगा ही; क्यों कि—

उद्यमः प्राणिनां प्रायः कृतोऽपि सफलस्तदा।
सदा प्राचीन पुण्यानि, सबलानि भवन्तिहि॥

अर्थात्—प्रायः प्राणियोंका उद्योग तभी सफल होता है, जब प्राचीन पुण्य प्रबल होते हैं।

यह सुन, मन्त्रीने प्रियङ्करकी बतलाई हुई चीजें मँगवायी। उस दिन अष्टमी थी। प्रियंकरने उसी दिन मन्त्रीके घरमें श्रीपार्श्वनाथ भगवानकी मूर्त्ति स्थापित करायी, पुष्प आदिसे उनकी पूजा की और धूपादिसे सुगन्ध करनेके बाद उपसर्गहर स्तोत्र पढ़ने लगा। उसी समयसे मन्त्रीकी कन्या अच्छी होने लगी।

उसी समय एक अधेड़ वयसका निर्धन ब्राह्मण प्रियंकरके घर आया और उसे आशीर्वाद देकर सामने बैठ गया। प्रियंकरने मधुर वचनोंसे पूछा,—"हे द्विजोत्तम! आपका शुभागमन किस लिये हुआ है?

ब्राह्मणने कहा,—"हे सत्पुरुष! तुम्हारेही योग्य कुछ काम लेकर आया हूँ।"

प्रियंकरने कहा,—"आप अपनी बात कह सुनाइये। यदि मुझसे बन पड़ेगा, तो मैं आपका काम जरूर कर दूँगा।"

ब्राह्मणने कहा,—"हे सज्जन! यदि तुम मेरी प्रार्थना अनसुनी न कर दो, तो कहूँ; क्यों कि कहा है, कि दूसरोंकी अर्जी सुनकर कान बहरे कर लेनेवाले संसारमें पैदाही न हों तो अच्छा है। इस संसारमें परोपकार ही सार है। कहते हैं, कि मनुष्यकी नक़ली मूर्त्ति खेतकी रखवाली करती है, ध्वजा घरकी रक्षा करती है, भस्म कणोंकी और दाँतोंसे दबाए हुए तृण

प्राणोंकी रक्षा करते हैं; फिर जो मनुष्य होकर भी परोपकार नहीं करता, उसका तो जन्मही व्यर्थ समझना चाहिये।"

इस तरहकी भूमिका बाँधकर ब्राह्मणने कहा,—"हे पुरुषोत्तम! सिंहलद्वीपमें सिंहलेश्वर नामका राजा है। वह एक बड़ा भारी यज्ञ कर रहा है। वह दक्षिणामें बहुतसे ब्राह्मणोंको लाख रुपये दामवाले हाथी दान करनेको है। इस लिये मैं लोभके मारे वहाँ जाना चाहता हूँ। इस पापी पेटके लिये आदमी क्या-क्या नहीं करता? किस-किसकी बातें नहीं वर्दास्त करता? किस-किसके आगे सिर नहीं झुकाता? मैं भी लोभ में पड़कर वहाँ जाना चाहता हूँ। इसी लिये मैं अपनी स्त्रीको तुम्हारे पास छोड़ जाना चाहता हूँ। जब तक मैं लौटकर नहीं आऊं, तब तक मेरी इस रूप लावण्यमयी स्त्रीको अपने घर रखो। यह तुम्हारे घर पानी भरेगी, कूटे-पीसेगी, रसोई पकायेगी। जो-जो काम तुम लोग कहोगे, वह किया करेगी। मेरा ऐसा कोई अपना सगा नहीं है, जिसके पास इसे छोड़ जाऊँ, इसी लिये मैं तुम्हारे पास इसे छोड़ जाना चाहता हूँ।"

यह सुन, प्रियंकरने कहा,—"विप्र देवता! इस नगरमें आपकी जाति और गोत्रके बहुतसे लोग रहते हैं। आप उन्हींसे क्यों नहीं यह बात कहते?"

ब्राह्मणने कहा,—"मेरा मन और कहीं भरता ही नहीं, इस लिये तुम्हीं मेरा यह भार स्वीकार करनेकी दया करो।"

प्रियंकरने कहा,—"अच्छा, तुम अपनी स्त्रीको छोड़ जाओ;

पर देखो, अपना काम हो जानेपर झटपट यहाँ चले आना।"

ब्राह्मणने प्रसन्न होकर कहा,—"अच्छा, देखो, जो कोई काशी-वासी कश्यप गोत्री, कामदेव पिता, कामलता माता, केशव नाम, कर पत्रिका हाथमें और कषाय वस्त्र शरीरमें—इन सात ककारोंसे मेरी निशानी तुमको दे, उसीको तुम मेरी स्त्री सौंप देना।"

यह कह, वह ब्राह्मण वहाँसे चलनेको तैयार हुआ। यह देख: प्रियंकरने कहा,—"विप्रजी! मैं चाहता हूँ कि आपकी यात्रा शुभ हो, आप जल्दीही लौटें, कार्यमें आपको सफलता मिले, *आप जभी आओगे, तभी आपको आपकी स्त्री वापिस* मिल जायेगी।"

इसके ठीक तीसरे ही दिन उसी ब्राह्मणकेसे रूप, वयस, वर्ण, नाम और निशानी बतलानेवाला, उसीकी तरह बातें करने वाला, उसीकेसे नेत्र और मुखवाला एक ब्राह्मण प्रियंकरके पास आया। प्रियंकरने कहा,—"ब्राह्मण देवता! आप इतनी जल्दी क्यों वापिस आ गये? क्या आप वहाँ गये ही नही? क्या आपके स्वजनोंने आपको यहीं अँटका लिया? अथवा किसी शुभ मुहूर्त्तके लिये आप यहाँ रुके रह गये?"

ब्राह्मणने कहा,—"हे सज्जन! मैं समुद्रमें जहाज़ डूबनेसे कहीं जान न चली जाये, इसी डरसे वहाँ नहीं गया। कारण, धनके लोभमें जान देना कोई बुद्धिमानीकी बात नहीं है। कहा भी है, कि यदि धनके लिये शत्रु के सामने सिर झुकाना पड़ता

हो, धर्मकी मर्यादा छोड़नी पड़ती हो, अत्यन्त क्लेश होनेकी सम्भावना हो, तो उस धनका लोभ छोड़ देना चाहिये। इसी लिये जान जोखिममें पड़ते देखकर मैं वहाँ नहीं गया। यहीं आप जैसे भाग्यवानोंके भरोसे काम चला करेगा। क्या जान देने जाऊँ ?"

यह कह, स्त्रीको साथ लेकर वह वहाँसे चला गया। कई महीने बाद वह पहला ब्राह्मण अपनी स्त्रीसे मिलनेके लिये उत्सुक होता हुआ प्रियंकरके पास आया और उसको आशीर्वाद देकर उसके सामने बैठ गया। कुशल-मंगल पूछने पर उसने कहा,—"महात्मन्! मैं तुम्हारी कृपासे यहाँसे जाकर गजादि वस्तुएँ दानमें ले आया और आज सकुशल यहाँ आ पहुँचा हूँ। तुमने मेरे ऊपर बड़ा भारी उपकार किया है, इस लिये मैं इसी चिन्तामें हूँ कि किस तरह तुम्हारे उस उपकारका बदला चुकाऊँ। ख़ैर, पीछे देखा जायेगा। इस समय कृपाकर मेरी स्त्रीको मेरे हवाले करदो।"

उसकी ये बातें सुन, प्रियंकरको तो काठसा मार गया। उसने थोड़ी देर बाद कहा,—"बड़े आश्चर्यकी बात है। तुम तो जिस दिन अपनी स्त्रीको मेरे वहाँ रख गये, उसके तीसरे ही दिन आकर उसे ले गये। फिर आज क्यों मुझसे माँग रहे हो? तुमने जो सात निशानियाँ बतलायी थीं, वही सब बतलाकर उसे ले गये, फिर क्यों जाल फैलाते हो?"

ब्राह्मणने कहा,—"वाह! यह कैसी बातें कर रहे हो? क्या

मैं ब्राह्मण होकर झूठ बोलता हूँ? झूठे तो बनिये होते हैं। ये लोग देवताओंको भी ठगनेको तैयार रहते हैं, फिर आदमियों की तो क्या बात है? एक बनियाने एक ही चक्करमें एक देवी और यक्ष, दोनोंको फँसा डाला था। मैं तो जिस दिन यहाँसे गया, उस दिनसे कभी फिर यहाँ आयाही नहीं। कहो तो मैं इसके लिये शपथ खा सकता हूँ। यदि तुम लोभके मारे या पापके मारे मेरी स्त्रीको नहीं लौटाओगे, तो मैं यहीं जान दे दूँगा। तुम्हें ब्रह्म-हत्याका पाप लगेगा।।"

यह सुन प्रियंकर मन-ही-मन बहुत डरा, और दुःखित होकर सोचने लगा,—"तब मालूम होता है, कि कोई दुष्ट विद्या-साधक इस ब्राह्मणका रूप बनाकर मुझे धोखा दे गया। अब क्या हो?"

यही सोचकर प्रियंकरने कुछ कहनाही चाहा था; कि वह ब्राह्मण क्रोधके साथ बोल उठा,—"मैं तो अब अपनी स्त्रीको लेकरही यहाँसे उठूँगा।" यह कह वह वहीं धन्ना देकर बैठ गया। उस दिन वह सारा दिन बिना खाये-पिये रह गया। तब प्रियङ्कर और उसके घरवालोंने उस ब्राह्मणके पास आकर कहा,—"मालूम होता है, कोई दुष्ट भूत-पिशाच या सिद्ध आकर हम लोगोंको धोखा दे गया। बुरे दिन आनेपर ऐसाही होता है। देखो, रामचन्द्र सुनहले मृगकी माया नहीं जान सके, नहुपने ब्राह्मणोंको पालकी ढोनेवाला बना लिया, ब्राह्मणसे चक्र सहित धूम हरणकर लेनेकी दुर्बुद्धि अर्जुनको उत्पन्न हो गयी

और युधिष्ठिर जुएमें अपनी स्त्री तकको हार बैठे। इस लिये यह निश्चय जान लो, कि विपत्तिके समय बड़े-बड़े लोगोंकी भी बुद्धि बिगड़ जाती है। पर हमलोग बड़े चक्करमें हैं, कि आखिरकार यह शैतानी किसकी है?"

इसी तरह सब लोग सोचविचारमें पड़ गये। तब अन्तमें प्रियंकरने उस ब्राह्मणसे कहा,—"देखो, मैं तुम्हारी स्त्रीको अपने घरमें छिपाये हुए नहीं हूँ। इस बातकी मैं शपथ खाकर कहता हूँ। यदि मैंने तुम्हारी स्त्री छिपा रखी हो, तो जीव हिंसा करने और झूठ बोलनेसे जो पाप होता है, वही मुझे लगे। परायी चीजें चुरानेसे, कृतघ्नता और विश्वासघात करनेसे, परायी नारीके संग भोग करनेसे, धर्मकी निन्दा करनेसे, पंक्ति भेद करनेसे, पक्षपात करनेसे, अपनी नारीको छोड़कर परायी नारीसे प्रेम करनेसे, दो स्त्रियोंसे प्यार करनेसे, झूठी गवाही देनेसे, दूसरेकी बुराई करनेसे, पितासे द्रोह करनेसे, दूसरेका घर बिगाड़नेसे जो पाप लगता है, वही मुझे लगे, यदि मैंने तुम्हारी स्त्रीको अपने घरमें छिपा रखा हो।"

इस प्रकार प्रियंकरको शपथ खाते देखकर भी उस ब्राह्मणको विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा,—"मैं पापियोंके क़समें खानेका विश्वास नहीं करता।"

प्रियंकरने कहा,—"अच्छा, तो तुम अपनी स्त्रीके बदलेमें जितना चाहो उतना धन मुझसे लेलो।"

उसने कहा,—"मुझे धन नहीं, स्त्री चाहिये।"

प्रियंकरने कहा,—"ओह! इस प्रकार झूठा कलङ्क अपने ऊपर लेनेकी अपेक्षा प्राण दे देना कहीं अच्छा है।" यह कह, उसने ज्योंही अपनी गरदनपर तलवार फेर देनी चाही, त्योंही उस ब्राह्मणने उसका हाथ थाम लिया और कहा,—अच्छा, देखो, इस तरहका दुस्साहस न करो। यदि तुम मेरी एक बात मानो तो मैं अपनी माँग रद्द कर दूँगा।"

प्रियंकरने कहा,—"आप जो कुछ कहेंगे, वह करनेके लिये मैं हर तरहसे तैयार हूँ। यदि आप कहें, तो मैं सदाके लिये आपका दास हो जाऊँ।"

ब्राह्मणने कहा,—"यदि तुम मन्त्रीकी लड़कीका इलाज करना छोड़ दो, तो मैं तुम्हें इस झंझटसे छुटकारा दे दूँगा।"

प्रियंकरने कहा,—"मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे तो प्राण रहते कदापि नहीं छोड़ सकता।"

ब्राह्मणने कहा,—अभी तो तुमने कहा है, कि आप जो कुछ कहेंगे, वही करूँगा। अब कहकर क्यों बात पलटते हो? यही क्या सन्तोंकी करनी है?"

प्रियंकरने कहा,—"चन्द्रमा दोपसे भरा है, कलङ्की है, कुटिल है, मित्र (सूर्य) का अवसान होनेपर उदय होता है, तो भी वह महादेवका प्यारा है। सज्जनगण अपने आश्रितोंके अवगुणोंका विचार नहीं करते, केवल गुण ही देखते हैं। एकबार जिसे वे अङ्गीकार कर लेते हैं, वह निर्गुण हो, तो भी उनकी आँखों पर है। देखिये, महादेव आज भी विपको धारण करते हैं, कमठ

पीठपर पृथ्वीका बोझ उठाये हुए हैं, समुद्र वड़वानलको अब तक नहीं छोड़ता। सज्जनोंका यही स्वभाव है। मुझे नहीं मालूम, उस बेचारी लड़कीपर आप इतने क्यों रुष्ट हैं कि इस तरह उसका दुःख छुड़ानेसे मुझे रोक रहे हैं? आपका उसने क्या बिगाड़ा है? उस बेचारीकी हक़ीक़तही क्या है? मच्छड़ पर तोप क्यों चलाने जाते हैं?"

ब्राह्मणने कहा,—"व्यर्थ क्यों बकवाद करते हो? देखो, जिसकी जीभ वशमें नहीं है, उसका सात जगत वैरी हो जाता है। जिसकी जिह्वामें मिठास है, उसके वशमें तीनों लोक हैं। विद्या, मित्र, बान्धव ये सब जिह्वाके अग्र भागपर ही रहते हैं

यह सुन, प्रियङ्करने कहा,—"आपके इस वचन-प्रपञ्च से तो यही मालूम पड़ता है, कि आप ब्राह्मण नहीं; बल्कि कोई देव या दानव हैं।"

यह सुनतेही उस ब्राह्मणने अपना दिव्यरूप प्रकट कर कहा,—"हे पुरुषोत्तम! राजाके बागीचेमें मेरा निवास है। मैं सबकी आशा पूरी करने वाला सत्यवादी नामका यक्ष हूँ। इसीसे सब लोग मेरी पूजा करते हैं। एक दिन मन्त्रीकी लड़की अपनी सखियोंके साथ उसी बाग़में टहलने आयी थी। घूमती-फिरती हुई वह मेरे मन्दिरके पास आ पहुँची। मेरी मूर्त्तिको देखकर उसने हँसकर कहा,—"यह कोई देवता है या पत्थर रखा है! बस वह यह कह नाक भौं चढ़ाये हुई वहांसे चली गयी। मैं भी उसी दिनसे उसे तङ्गकर रहा हूँ।"

यह सुन, प्रियङ्करने कहा,—"यक्षेन्द्र! रास्ता चलते हुए हाथीको देखकर यदि कोई कुत्ता भूँके, तो क्या हाथीको उसके साथ झगड़ा करना चाहिये? सिंहको देखकर सियार यदि मुँह चिढ़ावे तो क्या उसे स्यारके साथ झगड़ा करना उचित है? पगली स्यारिन यदि सिंहके सामने आकर हुँआ-हुँआ करे, तो क्या सिंहको उसके साथ लड़ना चाहिये? जो अपनी बराबरीका नहीं है, उसके साथ भले आदमी झगड़ा नहीं करते। उसे मुँह नहीं लगाते। कौआ भलेही गजराजके सिरपर बीट कर दे; पर इससे उसका कुछ नुक़सान नहीं होता। कौआ तो अपनी नीचता दिखाही चुका, अब वह अपनी बड़ाई क्यों खोवे? इसलिए हे उत्तम! आप इस अनजान बालिकापर कोप क्योंकर रहे हैं?"

जब कुमारने इस प्रकार मीठी-मीठी बातें सुनाकर उसका कोप शान्त किया, तब यक्षने कहा,—"तुम्हारे उपसर्ग-हर-स्तवनके प्रतापसे मैं अब इस लड़कीके शरीरमें टिका नहीं रह सकता। इतनी देरतक तो मैं तुम्हारी परीक्षा कर रहा था; पर तुम्हारा साहस देखकर मैं बड़ाही सन्तुष्ट हुआ हूँ, इसलिये तुम कोई वर माँगो।"

प्रियङ्करने कहा,—"हे यक्षराज! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो कृपाकर मन्त्रीकी कन्याको एकदम नीरोगकर दो। बस मैं तुमसे इतनीही प्रार्थना करता हूँ।"

यह सुन, यक्षने मन्त्रीकी कन्याको एकदम चङ्गा कर दिया और कहा,—"यह मेरी निन्दा करनेके कारण अनेक पुत्र-पुत्रि-

योंकी माता होगी।" यह कह और प्रियंकरको पशु-पक्षियोंकी बोली समझनेकी विद्या सिखलाकर यक्ष अपने स्थानको चला गया।
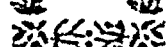
इधर अपनी लड़कीको एकदम भला-चङ्गा देखकर मन्त्रीने अपने मनमें विचार किया,—"प्रियङ्करने मेरी कन्याका कितना बड़ा उपकार किया है ? इसलिये मैंतो अब इसकी शादी इसीके साथ कर दूँगा।" ऐसा विचार कर उसने बड़े आग्रहके साथ बड़ी धूमधामसे अपनी कन्याका विवाह प्रियंकरके सङ्ग कर दिया। बहुतसा धन-रत्न दहेजमें पाकर अपनी नव-विवाहिता पत्नीके साथ घर लौटते हुए प्रियंकरने सोचा,—"ओह ! यह सब उपसर्ग-हर-स्तोत्रकाही प्रभाव है !"

इसके बाद प्रियंकर अपनी समस्त स्त्रियोंके साथ संसारके सारे सुख भोगता हुआ आनन्दसे दिन बिताने लगा।

राज्य-प्राप्ति।

यक्षके कहे अनुसार मन्त्रीकी कन्या यशोमती प्रतिवर्ष जुड़ैले बालक पैदा करने लगी। कुछही दिनोंमें वह कई लड़के-लड़कियोंकी माँ हो गयी। उनका पालन-पोषण, रक्षण, भोजन आदि जुटाते-जुटाते उसका दम नाकों आ गया। वे लड़के भी आपसमें खूब लड़ा करते थे, जिससे वह और दुखी रहती थी। रह-रहकर उसके जीमें यही आता था, कि इससे तो बाँझ रहनाही अच्छा था। यह सब पराई निन्दाका फल है। इसीसे कहा है, कि अपनी निन्दाके समान पुण्य और परायी निन्दाके समान पाप इस दुनियामें दूसरा नहीं है।

एक दिन प्रियंकर जिन-मन्दिरमें पूजा करके अपने घर लौटा आरहा था। इसी समय रास्तेमें एक नीमके पेड़पर बैठा हुआ काग बोल उठा। प्रियंकर यक्षकी बतलायी हुई विद्याके प्रभावसे उसकी बोली समझ गया। वह काग यही कह रहा था, कि इस नीमके पेड़की जड़में तीन हाथ नीचे लाखोंकी सम्पति गड़ी है, तुम उसे लेकर मुझे खानेको दो। यह सुन प्रियंकरने वहाँकी

मिट्टी खोदनी शुरू की। लोगोंने पूछा कि यह क्या कर रहेहो? उसने कहा, कि घरके लिये मिट्टी खोद रहा हूँ। इसके बाद कागको दही आदि खिलाकर वह वहाँकी गड़ी हुई सम्पति उठाकर घर ले आया।

इसके बाद अशोक राजाने प्रियंकरके गुणोंकी प्रशंसा सुनकर उसे अपने दरबारमें बुलाया और कहा, कि तुम प्रतिदिन मेरे दरबारमें आया करो। आज्ञानुसार वह प्रतिदिन दरबारमें आने लगा। पूर्व पुण्योंके प्रभावसे राजाका स्नेह उसपर दिन-दिन बढ़ता चला गया। कहा भी है, कि राजाकी ओरसे पूरा-पूरा मान मिलना, अच्छा खाना मिलना, खूब धन होना, सुपात्रको दान देना, हाथी-घोड़े और रथकी सवारी तथा तीर्थ-यात्राका संयोग होना बड़ेही सुखकी बात है। यह सब विना पूर्व पुण्योंके नहीं मिलता।

प्रियङ्करको राजाकी ओरसे इतना मान मिलते देखकर और लोगभी उसकी बड़ी प्रतिष्ठा करने लगे। कहा भी है, कि जिसका राजदरबारमें मान होता है, जो धनी, विद्वान् या तपस्वी होता है और जो दानी या वीर होता है, उसका सम्मान सभी लोग करते हैं।

इसके कुछ ही दिन बाद राजाके अरिशूर और रणशूर नामके दोनोंही लड़के ज्वरसे बीमार पड़े और मृत्युको प्राप्त हुए। कहते हैं, कि आदमी सोचता कुछ है और हो कुछ औरही जाता है। कमलकी कलीमें छिपा हुआ भौंरा जबतक यही सोचता

रहता है, कि रात जायेगी, सवेरा होगा, सूर्य्य उदय होंगे, कमल खिलेगा और मैं बाहर निकलूँगा, तब तक सुबह होते-न-होते हाथी आकर कमलकोही सूँड़से तोड़कर मुँहमें डाल देता है! राजकुमारोंकी मृत्युसे सारे नगरमें शोक उमड़ पड़ा। राजाने तो मारे शोक और चिन्ताके दरबारमें आना तक बन्द कर दिया। यह देख मन्त्रीने उन्हें समझाया,—हे राजन्! यह बाततो दैवाधीन है। इसमें मनुष्यका चाहाही क्या है? एक दिनतो सभीको मरना पड़ता है। फिर इसमें शोक करनेसे क्या लाभ है? धर्म, शोक, भय, आहार, निद्रा, काम, कलह और क्रोधको जितना बढ़ाओ, उतनाही बढ़ते हैं। फिर जब तीर्थंकरों, गणधरों, चक्रवर्त्तियों, वासुदेवों और बलदेवोंको भी दुष्ट दैवने मारे बिना नहीं छोड़ा, तब साधारण मनुष्योंकी क्या गिनती है? इस लिये हे स्वामी! आप चिन्ता छोड़िये। देखिये, सगर चक्रीके साठ-हजार और सुलसाके बत्तीस पुत्र तो एकही दफे मारे गये थे। जन्म लेनेवाला एक दिन अवश्यही मरता है और मरा हुआ फिर जन्म लेता ही है। इस अटल बातके लिये शोक करना बेकार है।"

इस तरह मन्त्रीने बहुतेरा समझाया; पर राजाको पुत्रोंका शोक नहीं भूला। वे और अधिकाधिक-बेचैन होते चले गये। एक दिन राजाने सपना देखा; कि वे गधेपर सवार होकर दक्षिणदिशाकी ओर चले जारहे हैं। उन्होंने सवेरा होतेही मन्त्रीको एकान्तमें बुलवाकर इस सपनेकी बात कह सुनायी। मन्त्रीने एक स्वप्नशास्त्रके जानने वालेको बुलाकर इस स्वप्नका

फल पूछा। उसने कहा,—"इस स्वप्नसे शीघ्र मृत्यु होनेकी बात मालूम पड़ती है। ऐसा सपना देखनेवाला बहुत जल्द मरता है।"

यह बात सुनकर राजा और मन्त्री दोनों ही बड़ी चिन्तामें पड़ गये। इसके बाद राजा पुण्य संचय करनेके इरादेसे देव-मन्दिरोंमें पूजा कराने और दीनोंको दान देने लगे।

एक दिन राजा दरबारमें आ बैठे। उन्हें प्रणाम करनेके लिये मन्त्री, सामन्त, सेनापति, सेठ, पुरोहित और सभी दरबारी आ पहुँचे। उसी समय वहाँ जानेके लिये प्रियंकर भी अपने घरसे बाहर निकला। इतनेमें आकाश-वाणी हुई,—"प्रियंकर! आज राजाकी ओरसे तुम्हारे लिये भयका कारण पैदा किया जानेवाला है। तुम चोरोंकी तरह बाँधे जाओगे।" यह सुन, प्रियंकरने सोचा,—"अरे, मैंने तो राजाका कोई अपराध नहीं किया, फिर ऐसा क्यों होगा? पर राजाका भरोसा ही क्या? सुन्दरी स्त्री, जल, अग्नि और राजाका सेवन बहुत सम्हलकर करना चाहिये, नहीं तो किसी दिन जानही आफ़तमें पड़ती है। राजा लोग अपना मतलब गाँठनेके लिये निरपराध जीवोंको भी सतानेसे बाज़ नहीं आते।"

यह सब सोचकर भी वह साहसी दरबारमें चलाही आया। ज्योंही उसने राजाको प्रणाम करनेके लिये सिर झुकाया, त्योंही एकाएक वह देववल्लभ नामका हार उसके सिर परसे नीचे गिर पड़ा। सब दरबारियोंने उसे गिरते देख लिया। यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। सब यही कहने लगे, कि राजाका

खोया हुआ हार इसी प्रियंकरके पास था। अपने सिर परसे हार नीचे गिरते देखकर प्रियंकरको भी कम अचम्भा नहीं हुआ। उसने सोचा,—"यह क्या हुआ ? मुद्दतोंसे मिला हुआ मान-सम्मान आज चोरीका कलङ्क लगनेसे मिट्टीमें मिल गया। साथही मौत भी सिरपर आ पड़ी। यह तो देखता हूँ कि आकाश-वाणी सचही निकली। मैंने पिछले जन्ममें किसीको व्यर्थही कलङ्क लगाया होगा ? इसीसे आज मुझे भी यह दिन देखना पड़ा।"

वह ऐसा सोचही रहा था, कि राजा अशोकने कोतवालको हुक्म दिया, कि इस चोर प्रियंकरको सूलीपर चढ़ा दो। यह सुनतेही मन्त्रीने कहा —"महाराज ! यह काम कदापि प्रियंकरका नहीं हो सकता। यह बेचारा तो बड़ा उपकारी और पुण्यात्मा है। इसलिये आप पहले इसीसे खुलासा हाल पूछ लीजिये।"

यह सुन राजाने प्रियंकरसे पूछा,—"प्रियंकर ! तुमने यह लाख रुपये दामवाला हार कहाँ पाया ? क्या किसीने तुम्हारी भेंट किया है या किसीने तुम्हारे घर बन्धक रखा है ?"

प्रियङ्करने कहा,—"स्वामिन् ! मैं कुछभी नहीं जानता। मैंने तो आजतक इसे देखा भी नहीं।"

मन्त्रीने कहा,—"महाराज ! ज़रूर यही बात है। प्रियङ्कर चोर नहीं है, इसलिये इस मामलेमें विचारकर काम करना चाहिये। कारण, बिना विचारे काम करनेसे पीछे हाथ मल-मलकर पछताना पड़ता है। पण्डितोंको चाहिये, कि कोई भी अच्छा या बुरा काम करनेके पहले उसके परिणामका विचार

कर लें। यह आदमी कुलीन, गुणी और विनयी है। जैसे हंसकी चाल, कोयलकी कूक, मोरका नाच, सिंहका शौर्य्य, चन्दनकी सुगन्ध स्वाभाविक होती है, वैसेही कुलीनोंमें विनय भी स्वभावसे ही होती है। इसलिये हे राजन्! आप उतावली न करें। मुझे तो इसमें किसी देवकी करतूत झलकती है। मन्त्रीके मुँहसे ऐसी बातें सुनकर राजाने कहा,—"यह तुम्हारा जमाई है, इसीसे तुम ऐसा कह रहे हो; पर देखो, चोरकी सहायता करना भी अपराध है। चोर सात प्रकारके होते हैं, जैसे १ जो चोरी करे २ जो चोरकी मदद करे, ३ जो चोरके साथ सलाह करे, ४ जो चोरका भेद जाने, ५ जो उसके साथ लेनदेन रखे, ६ जो उसे अपने घरमें टिकावे और ७ जो उसे खानेको दे।"

राजाकी यह घुड़की सुनतेही मन्त्रीके मुँहपर मानों ताला पड़ गया। वह बेचारा चुप होकर बैठ गया। तब राजाने कोतवालसे कहा,—"अच्छा, कोतवाल! तुम इस चोरको ख़ूब मज़बूतीसे बाँधो।"

कोतवालने झटपट इस हुक्मकी तामील कर डाली। तब मन्त्रीसे राजाने कहा,—"देखो मन्त्री! उस दिन ज्योतिषीने बतलाया था, कि इस हारके चोरकोही मेरा राज्य मिलेगा; पर देखो, मैं तो इस चोरको सूली दिलवाये देता हूँ। मेरा राज्य मेरे गोतवाले पावेंगे।"

मन्त्रीने दबी ज़ुबानसे कहा,—"आपका कहना बिलकुल ठीक है।"

हे राजन्! मैं पाटलीपुत्र नगरसे यहाँ आ रही हूँ। यह प्रियंकर मेरा पुत्र है। यह वहाँसे नराज़ होकर भाग आया है।

(पृष्ठ ८१)

इसी समय भरे दरबारमें दिव्य रूपवती, दिव्य आभूषणवाली और दिव्य लोचनोंवाली चार विदेशी स्त्रियाँ आ पहुँचीं। उन्हें देख सारी सभा सन्नाटेमें आ गयी। राजाने उनसे पूछा,—"तुम कौन हो और कहाँसे किसलिये यहाँ आयी हो? क्या यहाँ तीर्थ करना है या किसी हित-मित्रसे मिलना है? मेरे योग्य कोई काम हो तो बतलाओ।"

उनमेंसे जो सबसे बड़ी उमरकी थी, उसने कहा,—"हे राजन्! मैं पाटलीपुत्र नगरसे यहाँ आ रही हूँ। यह प्रियङ्कर मेरा पुत्र है। यह वहाँसे नाराज़ होकर भाग आया है। मैं सालभरसे इसे ढूँढ़ रही हूँ। जब यहाँ आयी, तब मालूम हुआ कि प्रियंकर नामका एक वैश्यपुत्र अमुक रूप-रङ्ग और अवस्थावाला यहाँ रहता है। और पूछताँछ करनेपर पता चला कि इसपर आपकी बड़ी दया थी; पर आज यह चोरीके अपराधमें पकड़ा गया है। यही सुनकर मैं दरबारमें आयी हूँ। आपके दर्शनोंसे मेरा जीवन सफल हो गया।" यह कह उसने पास बैठे हुए प्रियंकरसे कहा,—"प्यारे पुत्र! तुम घरसे नाराज़ होकर क्यों चले आये?" इतनेमें दूसरी स्त्री उसे "भैया-भैया!" कहकर पुकारने लगी। तीसरीने उसे अपना देवर और चौथीने स्वामी बतलाया। यह तमाशा देख सब लोग आश्चर्यमें पड़ गये और मन-ही-मन सोचने लगे,—"अब इस प्रियंकरके पापका घड़ा फूटा चाहता है।" कितनेही उसको निरपराध जानकर उसकी हालतपर तरस खाने लगे। कितनेही उसकी प्रशंसा करने लगे और कितनेही निन्दा

करते हुए भी पाये गये; पर प्रियंकर एकदम चुप था—वह मन-ही-मन दैवको दोष देता और हँसता था। उसे किसीपर क्रोध नहीं आता था।

अबके उन स्त्रियोंमें से जो वृद्धा थी, वह बोली,—"राजन्! आप कृपा करके मेरे पुत्रको छुटकारा दे दीजिये।" राजाने कहा,—"इसने मेरा लाख रुपयेका हार चुराया है। फिर मैं इसे कैसे छोड़ दूँ?" वृद्धा बोली,—"यदि आप कहें तो, इसके लिये मैंही दण्ड दे सकती हूँ।" राजाने कहा,—"अच्छा, यदि तुम तीन लाख रुपये जुर्मानेके दे दो तो मैं इसे छोड़ दूँगा।" वृद्धाने कहा,—"तीन लाखकी तो बातही क्या है? मैं अधिक भी दे सकती हूँ; पर आप इसे छोड़ दीजिये।"

राजाने पूछा,—"इसका पिता कहाँ है? वह बोली,—"मेरे साथ है।" राजाने फिर पूछा,—"यह तुम्हारा कौन है?" वह बोली,—"मेरा पुत्र है।"

इतनेमें मन्त्रीने कहा,—"यह सब झूठी बातें हैं। इसका पिता पासदत्त और माता प्रियश्री इसी नगरमें हैं। आप उन्हें बुलाकर पूछ देखिये।"

राजाने कहा,—"वे तो इसके पालक हैं, उन्हें बुलानेका क्या काम है?" मन्त्रीने कहा,—"तो भी आप उन्हें एक बार यहाँ बुलवाइये।"

तदनुसार वे लोग दरबारमें बुलाये गये। अबतो राजा और सारे सभासद यह देखकर आश्चर्यमें पड़ गये, कि प्रियंकरके

माता-पिताका रूप-रङ्ग, आकार-प्रकार, बोल-चाल, अवस्था-व्यवस्था ठीक इन नये बने हुए माता-पिताके समानही है, मानो दोनों एक साँचेके ढले हों! यह देख, राजाने मन्त्रीसे कहा,—"मन्त्री! तुम्हारा कहना ठीकही मालूम पड़ता है।"

अब तो दोनों पिता अपने पुत्रके लिये विलाप करने लगे। उनका आपसमें झगड़ा भी होने लगा। दोनों राजासे कहने लगे, कि आप इस झगड़ेका फ़ैसला कर दें।

राजाने मन्त्रीसे कहा,—"हे मन्त्री! तुम्हीं कोई युक्ति इसके फ़ैसलेकी निकालो।" मन्त्रीने सोच-विचार करके कहा,—"इस राजसभामें एक ऐसी ओरस शिला रखी है, जिसका बोझ सात हाथियोंके बराबर है। जो कोई उसे एक हाथसे उठा लेगा, उसीका यह प्रियंकर पुत्र माना जायेगा।" यह सुनतेही नये आये हुए पिताने तो बातकी बातमें वह शिला उठाली और बेचारा पासदत्त सेठ भौंचकसा बना हुआ खड़ा-खड़ा देखता रह गया।

यह देखकर अबके मन्त्रीने राजासे कहा,—"हे महाराज! यह शिला उठाना सामान्य मनुष्यका काम नहीं है। इस लिये यह पुरुष साधारण आदमी नहीं मालूम पड़ता।" यह सुन, राजाने भी अपने मनमें कुछ विचार कर कहा,—"महाशय! सचमुच तुम तो कोई मामूली आदमी नहीं मालूम होते। अवश्यही कोई देव, दानव या विद्याधर हो। इसलिये तुम तो इसके पिता नहीं हो सकते। फिर मुझे क्यों धोखा दे रहे हो? बोल जाने दो, अपना असली स्वरूप प्रकट करो।"

यह सुनतेही उस पुरुषने अपना देवरूप दिखा दिया और वे चारों स्त्रियाँ अदृश्य हो गयीं। देवने कहा,—"हे राजेन्द्र! मैं तुम्हारे इस राज्यका अधिष्ठायक देव हूँ। मैं तुम्हें मृत्युकी सूचना देने और राज्यके योग्य व्यक्तिको सिंहासनपर बैठानेके लियेही मैं यहाँपर आया हूँ। तुम इस समय बड़े लोभी हो गये हो। तुम्हारा यही हाल हो रहा है, कि अङ्ग गल गये, बाल पक गये, दाँत टूट गये, लाठी टेके चलते हैं; पर आशा तृष्णा अब भी पिण्ड नहीं छोड़ती। राजन्! अब तुम बहुत बूढ़े हो गये। अबतो तुम्हें सब छोड़कर धर्मका काम करना और पर लोक बनानाही उचित है। इस राज्यकी बागडोर किसी योग्य व्यक्तिके हाथमें देकर धर्ममें लग जाइये। देखो, गिरती हुई छतको बचानेके लिए लोग पुराने खम्भेको निकालकर नया खम्भा लगाया करते हैं।"

राजाने पूछा,—"अब आपही कृपाकर बतलाइये, मैं किसे राज्य दे डालूँ? ख़ैर पहले यहतो बतलाइये, कि मैं कब मरूँगा?"

देवने कहा,—"ठीक आजके सातवें दिन तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी।"

यह सुनतेही राजा मन-ही-मन बहुत डरे। कहाभी है, कि दारिद्र्यके समान पराभव, मरणके समान भय और क्षुधाके समान वेदना और कोई नहीं है। थोड़ी देर बाद राजाने देवतासे कहा,—"अच्छा, अब आप इस राज्यके योग्य कोई आदमी बतलाइये।"

देवने कहा,—"इस परम पुण्यात्मा प्रियंकरकोही तुम अपना राज्य दे डालो। दूसरा कोई इसके बराबर नहीं है।"

राजाने कहा,—"इस हारके चोरको तो राज्य देना उचित नहीं; क्योंकि बुरे राजाके हाथमें पड़कर प्रजा कभी सुख नहीं पाती, जैसे दुष्ठ पुत्रसे पिताको कभी सुख नहीं मिलता। दुष्टा नारीसे पतिका जीवन सुखी नहीं होता। बुरे विद्यार्थीको पढ़ानेसे गुरुको यश नहीं मिलता है।"

देवने कहा,—"यदि सचमुच अपनी प्रजाकी भलाई चाहते हो तो पुण्यसे भी बढ़कर इस प्रियंकरकोही राजा बनाओ। यह एकदम निरपराध है। इसने तुम्हारा हार नहीं चुराया। भला सोचनेकी बात है, कि पहरेदारोंसे घिरे और तालेसे जकड़े हुए तुम्हारे भण्डारमें यह कैसे घुस सकता है? वह हार आजतक मैं ही अपने पास रखे हुए था। आज यही सूचित करनेके लिए मैंने वह हार इसके पाससे निकाला है, कि यही राज्यके योग्य पुरुष है।"

यह सुन, राजाने प्रियंकरके बन्धन खुलवाकर देवसे कहा,—"मेरे इस दानशूर नामक पुत्रको राज्यपर बैठाओ।" देवताने कहा,—"राजन्! यह भी अल्पायु है। साथ ही सिवा प्रियंकरके और कोई प्रजा प्रिय नहीं हो सकेगा। यदि तुम्हें न विश्वास हो तो नगरसे चार कुमारिकाओंको बुलवाओ और उनसे कहो, कि चाहे जिसके तिलक लगा दें। फिर वे जिसे आपसे आप तिलक लगा दें, उसीको गद्दी दे डालना।"

यह बात राजा और सब दरबारियोंको पसन्द आयी। उन्होंने उसी समय नगरसे चार कुमारियोंको बुलवाकर उनके हाथमें कुङ्कुमका पात्र देकर तिलक करनेको कहा। चारोंने बारी-बारीसे प्रियंकरको ही तिलक किया। देवताने उन चारोंके मुखसे चार श्लोक भी कहलवाये, जो इस प्रकार थे,—

पहलीने कहा,—

"जिन भक्तः सदा भूया, नरेन्द्र त्वं प्रियंकर !।
शूरेषु प्रथमः स्वीया, रक्षणीया प्रजा सुखम् ॥"

अर्थात्—"हे प्रियंकर राजा ! तुम सदा जिनभक्त होना और वीरोंमें अग्रगण्य कहलाते हुए, अपनी प्रजाको सुखसे रखते हुए उसकी रक्षा करना।"

दूसरीने कहा,—

"यत्र प्रियंकरो राजा, तत्र सौख्यं निरन्तरं।
तस्मिन् देशे च वास्तव्यं, सुभिक्षं निश्चितं भवेत् ॥"

अर्थात्—"जहाँ प्रियंकर राजा है, वहीं सदा सुख-ही-सुख है। उस देशमें सदा सुकाल रहेगा इसमें शक नहीं, इस लिये उसी देशमें रहना चाहिये।"

तीसरीने कहा,—

अशोक नगरे राज्यं, करिष्यति प्रियंकरः।
द्वासप्ततिसुवर्षाणि, स्वीयपुण्यानुभावतः ॥

अर्थात्—अपने पुण्योंके प्रभावसे राजा प्रियंकर अशोक नगरमें बहुत वर्षतक राज्य करेगा।"

चौथीने कहा,—

> "प्रियंकरस्य राज्येऽस्मिन्न भविष्यन्ति कस्यचित्।
> रोग-दुर्भिक्ष-मारीति-चौर-वैरिभयानि च ॥

अर्थात्—"प्रियंकरके इस राज्यमें किसीको इतने भय कभी न होंगे; रोग, दुर्भिक्ष, महामारी, ईति-भीति, चोर और शत्रुका भय।'

इसके बाद देवताओंने प्रियङ्करके ऊपर फूल बरसाये और राजा अशोकचन्द्रनेभी सन्तुष्ट होकर अपने हाथों उसके ललाटपर तिलक लगा दिया। तदनन्तर मन्त्री आदि राजपुरुषोंने प्रियंकरको राज्य पर बैठाया। उसके ऊपर छत्र-चँवर झुलने लगे। वाराङ्गनाएँ आकर नाच-गान करने लगीं। सबलोग आनन्द-उत्सव करने लगे।

इस प्रकार जब प्रियंकरके देवता द्वारा राज्यपर बैठाये जानेका हाल शत्रु-राजाओंने सुना, तब वे भी भेट लेकर उसके पास आये। सारी प्रजा उसकी बड़ाई करने लगी।

इसके बाद सातवें दिन सचमुच राजा अशोकचन्द्रकी मृत्यु हो गयी। प्रियंकरने अपने पिताकी भाँति उनकी उत्तर-क्रिया की और राजाके पुत्र तथा गोत्रवालोंको गाँव आदि देकर सन्तुष्ट किया। इसके बाद उसने बहुतसे देशोंपर विजय प्राप्त की और अपने पैरोंपर अनेक राजाओंको सिर झुकाया।

इस प्रकार उपसर्ग-हर-स्तोत्रके प्रभावसे प्रियंकरको इस लोकमें सब सुख प्राप्त हुए। उसके भण्डारमें अक्षय धन आगया। कहा भी है कि इस स्तोत्रके प्रभावसे संसारिक जीवोंको सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और उनके शत्रु भी मित्र बन जाते हैं।

अब तो राजा प्रियंकर अपने देशोंमें नाना-प्रकारके दान-पुण्यके काम करने लगे। उनकी देखादेखी प्रजाभी धर्मका आचरण करने लगी। कहा भी है, कि 'यथा राजा तथा प्रजा'—जैसा राजा होता है, वैसीही प्रजा होती है। यदि राजा धर्मात्मा हुआ, तो प्रजाभी धर्मकी राहपर चलती है और यदि वह पापी हुआ तो सारे राज्यमें पापही पाप छा जाता है। प्रजा सदा राजाके पीछे-पीछे चलती है।

बारहवाँ परिच्छेद।
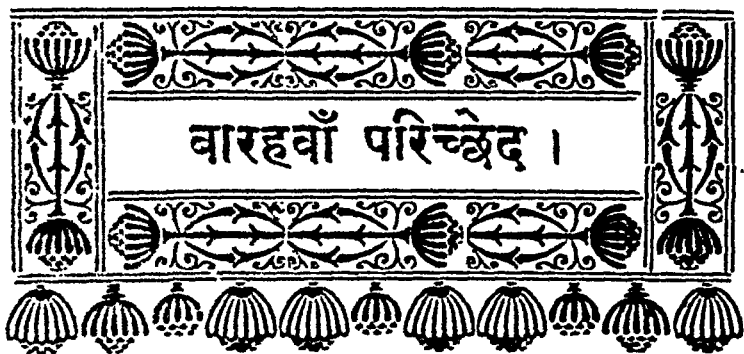
धर्मका अलौकिक प्रभाव।

इसी प्रकार बहुत दिन बीत जानेपर धनदत्त सेठकी पुत्री श्रीमती, जो राजा प्रियंकरकी पटरानी थी, वह एक लड़केकी माता हुई। राजाने बड़ी धूमधामसे उसके जन्मोत्सवपर दान-पुण्य और जलसे-तवाज़े किये। राजाने उसका नाम जयंकर रखा। पाँचवें महीनेमें उस लड़केके दाँत निकलने शुरू हुए। यह देख राजाने शास्त्रज्ञोंको बुलाकर इसका फल पूछा। उन लोगोंने कहा,—"महाराज! यदि बच्चेके दाँत पहलेही महीनेमें निकलने शुरू हों तो कुलका ध्वंस होता है। दूसरे महीनेमें निकलने लगें तो बच्चा खुदही मर जाता है। तीसरे महीनेमें निकलनेसे बाप और दादेकी मौत होती है। चौथे महीनेमें निकलें तो भाइयोंका नाश होता है। पाँचवें महीनेमें निकलें तो अच्छा हाथी, घोड़ा, या ऊँट मिलता है। छठें महीनेमें निकलें तो कुलमें कलह और सन्ताप होता है। सातवें

महीनेमें धन-धान्य और पशुओंका नाश होता है। यदि दाँत सहित जन्म हो तो उसे राज्य मिलता है।"

यह सुन राजाने पण्डितोंको वस्त्र और द्रव्य देकर विदा किया। इसके बादही राजाके दूसरे हृदयके समान और सब राज-काजमें कुशल ऐसे मन्त्री शूल-रोगसे मृत्युको प्राप्त हुए। इससे राजा प्रियंकरको बड़ा दुःख हुआ; क्योंकि उत्तम मन्त्रीकेहीं बिना राजा रावणने भी अपना राज्य गँवाया और लक्ष्मणकी चतुराईसे ही रामने अपना गया हुआ राज्य फिरसे पाया था। तब राजाने मन्त्रीके पुत्रको बुलवाकर मन्त्रीके पदपर प्रतिष्ठित करनेके इरादे से उसकी बुद्धिकी परीक्षा लेनी चाही। अतएव उन्होंने इस श्लोकका अर्थ पूछा,—

"मुखं विनाऽस्त्येकनरोऽति शुद्धो,
हस्तेन भक्ष्यं बहु भाजनस्थम्।
रात्रिंदिवादौ न कदापि तृप्तः,
शास्त्रानभिज्ञः परमार्गदर्शी॥

अर्थात्—एक अति शुद्ध मनुष्य बिना मुँहकेही पात्रमें रखे हुए बहुतसे भक्ष्य-द्रव्यको हाथसे खा जाता है; पर रातदिन खाते रहनेपर भी उसे तृप्ति नहीं होती। वह आप तो शास्त्रसे अनभिज्ञ है; पर औरोंको मार्ग बतलाता है। बतलाओ, वह कौन है!"

यह सुन बुद्धिमान् प्रधान-पुत्रने कहा—"ऐसा तो दीपक होता है।"

राजाने फिर पूछा,—

> नारी तीन इकट्ठी मिलीं, दो गोरी तीजी साँवली।
> पुरुष बिना नहिं आये काज, सारे जगमें करतींराज॥

मन्त्री पुत्रने कहा,—"क़लम, दावात और स्याही।"

उसकी इस प्रकारकी हाज़िर जवाबी देख राजा बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उसको मन्त्री बनाही लिया। ठीकही कहा है, कि विमल बुद्धिवाले गुणी पुरुष नित्य शास्त्रका बोध और उसके द्वारा मान-सम्मान पाते हैं। बुद्धिसे सब कुछ मिलता है। तत्काल शत्रु भी पराजित हो जाते हैं। बुद्धिकी सहायतासेही एक छोटासा राजा बड़े-बड़े चोरोंकी सहायतासे शत्रुके दुर्गपर अधिकार करलेता है। बुद्धिसेही चाणक्य, रोहक और अभय-कुमार आदि पुरुषोंने बहुत शीघ्र महत्व लाभ किया था।

एक दिनकी बात है, कि अशोकपुरके पासही एक बगीचेमें श्रीधर्मनिधि सूरि अपने परिवार सहित पधारे। वन-रक्षकके मुँहसे उनके शुभागमनका संवाद सुनकर प्रियंकर राजा बड़े आनन्दित हुए और अपने परिवार सहित उनकी वन्दना करनेके लिये उद्यानमें आ पहुँचे। विधि-पूर्वक उनकी वन्दनाकर सब लोग उचित स्थानपर बैठ गये। तब आचार्य महाराजने उन्हें योग्य समझकर इस प्रकार धर्मोपदेश दिया,—

"श्री जिन-वन्दन, जिन-पूजा, नमस्कारमन्त्रका स्मरण, सु-पात्रको दान, सूरीश्वर (सद्गुरु) को नमस्कार करना और उनकी भक्ति करना तथा जीव-दया करना यह श्रावकोंका नित्य

कर्म है। खूब धूम-धामसे तीर्थ यात्रा करना, साधर्मिक-वात्सल्य करना, श्रीसंघकी पूजा करना, आगम बतलाना और उसकी वाचना देनी, यह वर्षकृत्य है। तीर्थयात्राका फल इस प्रकार है—निरन्तर शुभ ध्यान, असार लक्ष्मीसे चार प्रकारके सुकृतकी प्राप्तिरूपी उत्तम फल, तीर्थकी उन्नति और तीर्थंकर पदकी प्राप्ति। यात्रा करनेसे ये चार प्रकारके गुण प्राप्त होते हैं। और भी कहा है कि,—

वपुः पवित्री कुरु तीर्थ यात्रया,
चित्तं पवित्रीं कुरु धर्मवाञ्छया।
वित्तं पवित्रीकुरु पात्रदानतः,
कुलं पवित्रीकुरु सच्चरित्रतः॥

अर्थात्—'हे महानुभावो? तीर्थ यात्रा द्वारा शरीरको, धर्माभिलाष द्वारा मनको, सत्पात्रको दान देकर धनको और सच्चरित्र द्वारा कुलको पवित्र करो।

"विशेषतः श्री शत्रुञ्जय-तीर्थमें जाकर जिनेश्वरके दर्शन करनेसे दोनों बुरी गतियों—नरक और तिर्यंचका क्षय हो जाता है और पूजा तथा स्नान करनेसे हज़ार युगोंतक किये हुए दुष्कर्म दूर हो जाते हैं। ध्यान करनेसे हज़ार पल्योपमका, अभिग्रह करनेसे लाख पल्योपमका और सम्मुख जानेसे एक सागरोपमका सञ्चित पाप नष्ट हो जाता है। फिर नमस्कारके समानमन्त्र नहीं है, शत्रुञ्जयके समान तीर्थ नहीं है, जीव-दयाके

समान धर्म नहीं है, और कल्पसूत्रके समान शास्त्र नहीं है।"

इस प्रकार गुरु महाराजके उपदेश सुनकर राजा प्रियंकरका मन धर्ममें और भी दृढ़ हो गया।

इसके बाद राजाने श्रीगुरुको प्रणामकर उपसर्ग-हर-स्तोत्रके पाठ करनेकी आम्नाय पूछी। तब गुरु महाराजने कहा,—"हे राजन्! इस स्तोत्रमें श्री भद्रबाहु स्वामीने अनेक-मन्त्र-यन्त्र छिपा रखे हैं, जिसके स्मरण-मात्रसे जल, अग्नि, विष, सर्प दुष्ट ग्रह, राजरोग, राक्षस, शत्रु, महामारी, चोर और जङ्गली जानवरों आदिका भय दूर होता है। राजन्! तुम्हें यह सारा वैभव इसीके द्वारा प्राप्त हुआ है। पहले इस स्तोत्रमें छः गाथाएँ थीं। छठी गाथाके प्रभावसे धरणेन्द्रको स्वयं आकर स्मरण करनेवालेके कष्ट दूर करने पड़ते थे। इसलिये धरणेन्द्रने श्रीभद्रबाहु स्वामीसे प्रार्थना की कि भगवन्! मुझे बार-बार यहाँ आना पड़ता है, इस लिये मैं अपने स्थानपर सुखसे नहीं रहने पाता। अतएव आप मेरे ऊपर कृपाकर छठी गाथा गुप्तकर रखिये। पाँच गाथाएँ स्मरण करनेवालेके दुःख अपने स्थानपर बैठा-ही-बैठा दूर कर दिया करूँगा। यह प्रार्थना सुनकर श्री भद्रबाहु स्वामीने छठी गाथा छिपा डाली। तभीसे यह स्तोत्र पाँच गाथाओंवाला रह गया है। पहली गाथासे उपसर्ग, उपद्रव और विषधर जीवोंके विषका निवारण होता है। प्रथम और द्वितीय गाथासे ग्रह, रोग, महामारी, विषम ज्वर, स्थावर, जङ्गम विषका शमन होता है। पहली, दूसरी और तीसरी

गाथा स्मरण करनेसे दुःख, दुर्गति और हीनकुलकी प्राप्ति नहीं होती। सुख, सौभाग्य, लक्ष्मी और महत्वकी प्राप्ति होती है। चार गाथाएँ स्मरण करनेसे सब प्रकारके अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं। इन पाँचों गाथाओंमें श्री भद्रबाहु स्वामीने श्रीपार्श्व-चिंतामणि नामका महामन्त्र छिपा रखा है। और भी स्तम्भन, मोहन और वशीकरण आदि बहुतसे मन्त्र छिपा रखे हैं।"

इस प्रकार उपसर्ग-हर-स्तोत्रका बड़ा भारी प्रभाव सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और श्री गुरु महाराजको प्रणामकर अपने परिवार सहित अपने नगरमें चले आये। उस दिनसे वे पास वाले श्रीपार्श्व महाप्रभुके मन्दिरमें जाकर सारी रात और एक पहर बीत जानेतक उपसर्गहर स्तोत्रका ध्यान करने लगे।

एक दिन राजा प्रियंकर रातके समय श्रीपार्श्व प्रभुकी प्रतिमाके सामने बैठे हुए स्तोत्रके ध्यानमें डूबे हुए थे। उनके अङ्ग-रक्षक प्रासादके बाहर बैठे थे। सवेरा हो गया; पर राजा बाहर नहीं निकले। सभी मन्त्री आदि दरबारी दरबारमें आये; पर राजाको न देखकर उनके अङ्ग रक्षकोंसे पूछने लगे। उन्होंने कहा,—"वे रातको जिन मन्दिरके अन्दर गये, तबसे बाहरही नहीं हुए।" यह सुन मन्त्री मन्दिरमें चले आये। वहाँ आकर उन्होंने देखा, कि मूल द्वारके कपाट बन्द हैं। कपाटके छिद्रमें आँख लगाकर मन्त्रीने देखा, कि श्री पार्श्वनाथ प्रभुकी प्रतिमा सुगन्धित पुष्पोंसे सजी हुई है। सामने दीपक जल रहा है। पर राजा वहाँ नहीं दिखाई दिये। यह देख, मन्त्रीने सोचा,—

"हो सकता है, वे मन्दिरके भीतर किसी कोनेमें सो रहे हों; परन्तु नहीं, आशातनाके भयसे राजा कभी ऐसा काम नहीं कर सकते।" यही सोचकर मन्त्रीने मधुर वचनोंसे राजाको सम्बोधनकर कहा,—"हे राजन्! सवेरा हो गया और सभी सभासद् सभामें बैठे हुए आपकी राह देख रहे हैं। इस लिये आप शीघ्र आकर सभाकी शोभा बढ़ाइये।"

कई बार मन्त्रीने ऐसाही कहकर पुकारा; पर कोई जवाब नहीं मिला। तब मन्त्रीने सोचा, कि अवश्यही कोई देव दानव या विद्याधर राजाको हर ले गया। तब मन्त्रीने मन्दिरके द्वारको खोलनेके लिये अनेक उपाय किये; पर कोई काम नहीं आया। जैसे पुण्यहीनका कोई मनोरथ पूरा नहीं पड़ता। कुल्हाड़ी मारने पर उसीकी धार मुड़ जाती थी; पर द्वार नहीं खुलता था। सच है, देवताओंका बन्द किया हुआ द्वार मनुष्योंसे कैसे खुले? पीछे मन्त्रीने वहाँ धूप, नैवेद्य रखे। तब अधिष्ठायक देवने सन्तुष्ट होकर कहा,—"हे मन्त्री! वृथा चेष्टा न करो। पुण्यवान् राजाकी दृष्टि पड़तेही द्वार आपसे आप खुल जायेगा। इस समय तुम्हारे राजा आनन्दमें हैं। उनके लिये चिन्ता न करो।"

यह सुन, मन्त्रीने कहा,—"हे देव! मेरे राजा कहाँ हैं? क्या कोई उन्हें चुरा ले गया? वे कब आवेंगे?"

देवने कहा,—"उनको धरणेन्द्र अपने लोकमें अपनी समृद्धि दिखलानेके लिये ले गये हैं। इसलिए वे अब आजके दसवें

दिन यहाँ आवेंगे।" यह कह देव अदृश्य हो गया। मन्त्रीने सभामें आकर सबको यह बात कह सुनायी। सबलोग सन्तुष्ट होकर अपने-अपने घर चले गये। इसके ठीक दसवें दिन मन्त्री परिवार सहित नगरके बाहर राजाका स्वागत करनेके लिये आये। इतनेमें दिव्य अश्वपर सवार होकर राजा भी उनकी ओरसे आते हुए सबको दिखाई दिये। तत्काल राजाने यहाँ आकर सबसे भेंट की। मन्त्री आदिने उन्हें सादर प्रणाम किया। तदनन्तर खूब बाजे-गाजे और झण्डी पताकाओंके साथ राजाने नगरमें प्रवेश किया। सबसे पहले वे जिन मन्दिरमें आये। उसी समय उनकी दृष्टि पड़तेही किवाड़ खुल गये। राजाने तीन बार प्रदक्षिणाकर, निस्सिही कहकर मूल-मण्डपमें प्रवेश किया और प्रभुके पास अनेक उत्तम फल रखकर जिन प्रतिमाके सामने बैठे हुए इस प्रकार स्तुति करनी शुरू की,—

"जिन पार्श्व प्रभुकी धरणेन्द्र भी सेवा करते हैं, सब सुरासुर भक्तिके साथ जिनकी स्तुति करते हैं, जिन्होंने कमठको प्रतिबोध दिया, जिनका स्मरण करनेसे समस्त कार्योंकी सिद्धि होती है, जिनका तेज अत्यन्त अद्भुत है, जिनका प्रभाव आजतक प्रकट है, ऐसे श्रीपार्श्वनाथ प्रभु! आप हमारा कल्याण करें। श्रेष्ठ कनक, शंख और प्रवालके विविध आभूषणोंसे विभूषित और मरकत-मणि तथा मेघके समान, हे पार्श्वनाथ स्वामी! मैं तुम्हारी बार-बार स्तुति करता हूँ। इस कलिकालमें भी एक सौ सत्तर तीर्थंकरोंमें अपने प्रभावसे आप्तजनोंकी सत्वर

सिद्धि करनेवाले तथा सब देवोंसे पूजित हे पार्श्वनाथ! मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ।" इस प्रकार स्तुतिकर तथा शक्र-स्तव आदिका पाठकर राजा अपने घर आये।

वहाँ आनेपर मन्त्री आदिने राजासे पाताललोकका स्वरूप और धरणेन्द्रकी समृद्धि पूछी। यह सुन राजाने कहा,—"उस दिन मैं मन्दिरमें बैठा हुआ उपसर्गहर स्तोत्रका पाठ कर रहा था, उसी समय एक काला भुजङ्ग प्रकट हुआ। उसे देखकर भी मैं विचलित नहीं हुआ। जब वह श्रीपार्श्वनाथ प्रभुके पद्मासनपर चढ़ने लगा, तब मैंने प्रतिमाकी आशातनाकी आशंकासे उसकी पूँछ पकड़ी। पकड़तेही उसने सर्पका रूप छोड़ देवताका रूप धारण कर लिया, यह देख मैंने पूछा,—"तुम कौन हो? उसने कहा,—मैं तो श्री पार्श्वनाथ स्वामीका सेवक धरणेन्द्र हूँ। तुम्हारे ध्यानसे खिंचकर मैं यहाँ तुम्हारी परीक्षा लेने आया था; पर तुम ध्यानसे विचलित नहीं हुए। इसलिये हे पुरुषोत्तम! अब तुम मेरे साथ पाताल-लोकमें चलो। वहाँ मैं तुम्हें पुण्यका फल बतलाऊँगा। इसके बाद मैं धरणेन्द्रके साथ ही पाताल-लोक में गया। वहाँ मैंने सर्वत्र सोने और रत्नोंके चबूतरे देखे। एक जगह साक्षात् धर्मराज बैठे दिखाई दिये। पासही उनकी जीवदया नामकी पटरानी भी दिखाई दी। मैंने उन्हें प्रणाम किया, तो वे बोले,—'हे नरेन्द्र! मेरे आशीर्वादसे तुम चिरकाल तक राज्य करोगे।' वहाँसे आगे बढ़नेपर मैंने सात कोठरियाँ देखीं। जब मैंने धरणेन्द्रसे पूछा, कि ये क्या हैं,

तब वह बोले, कि इनमें सात प्रकारके सुख रहते हैं। मैंने पूछा,—"कौन-कौन? तब इन्द्रने कहा,—

आरोग्यं प्रथमं द्वितीयकमिदं लक्ष्मी स्तृतीयंयश,
स्तुर्यं स्त्रीपतिचित्तगा च विनयी पुत्रस्तथा पंचमम्।
षष्ठं भूपति सौम्यदृष्टि रतुला वासोऽभये सप्तमं,
सन्त्यैतानि सुखानि यस्य भवने धर्मप्रभावः स्फुटम्॥

अर्थात्—आरोग्य, लक्ष्मी, यश, पतिव्रता स्त्री, विनयी पुत्र, राजाकी अनुपम सौम्यदृष्टि और निर्भय स्थिति, ये सातों सुख सचमुच धर्मके प्रभावसेही किसीके घरमें होते हैं।

इसके बाद जब मैंने एक-एक कोठरीको अलग-अलग देखना शुरू किया, तब एक में मैंने सब रोगोंको हरने वाले छत्र-चँवर युक्त आरोग्य-देवको देखा। दूसरी में मैंने सुवर्ण, रत्न और माणिक्य देखे। तीसरी में एक बड़े भारी सेठको याचकोंको दान देते देखा। चौथीमें एक सुन्दरी पतिकी सेवा करती दिखाई दी। पाँचवींमें विनयी पुत्र और पुत्रवधूसे सम्पन्न गृहस्थका कुटूम्ब देख पड़ा। छठेमें न्यायी और प्रजा-पालक राजा दिखाई दिया। सातवींमें उपसर्ग हर-स्तोत्रका पाठ करता हुआ एक देव देखनेमें आया। यह सब देखकर मैंने धरणेन्द्रसे पूछा,—"हे इन्द्र! यह देव किसलिये इस स्तोत्रका पाठ कर रहा है?, इन्द्रने कहा,—"इस स्तोत्रका पाठ करनेसे देश, नगर और घरमें सब प्रकारके भयसे रक्षा होती है और मनोरथ सिद्ध होते हैं। यहीं पर इस स्तवकी आम्नाय, प्रभाव और मन्त्रकी सूचना देने-

वाली पुस्तकें रखी हैं। जहाँ श्रीधर्म और द्रव्य समान है, वहाँ ये सातों प्रकारके सुख आपसे आप प्राप्त हो जाते हैं। यह कह इन्द्रने मुझे सब प्रकारकी वैक्रियलब्धि बतलायी। वहाँसे आगे बढ़नेपर मुझे सोने और रत्नोंसे जड़ा हुआ एक क़िला दिखाई दिया। उस किलेमें सात फाटक थे। पहले फाटकमें घुसनेपर मैंने चारों ओर कल्पवृक्षोंसे घिरे हुए सामान्य देवताओंके भवन देखे। दूसरेमें ऐसे तोते नज़र आये, जिनके पंख सोनेके थे। उनमें से एक तोता मुझे देखतेही बोल उठा—

समागच्छ समागच्छ प्रियंकर महीपते !
पुण्याधिकैरिदं स्थानं प्राप्यते न परैर्नरैः ॥

अर्थात्—हे प्रियंकर राजा, आओ, भले पधारो। यह स्थान सिवा बड़े पुण्यात्मा पुरुषोंके और किसीको प्राप्त नहीं होता।

"तीसरे फाटकमें घुसनेपर मैंने नाचते हुए मोर देखे। एक मोर मुझे देखतेही कह उठा,—

सफलं जीवितं जात-मद्य राजेन्द्रदर्शनात्।
धन्यं तन्नगरं नूनं यत्र राजा प्रियंकरः ॥

अर्थात्—आज राजेन्द्रके दर्शनोंसे मेरा जीवन सफल हो गया : धन्य है वह नगर, जहाँ प्रियंकर जैसा राजा है।

"चौथे फाटकमें प्रवेश करनेपर मुझे अपने आगे-आगे उछलते-कूदते हुए कस्तूरी-मृग और राजहंस देखनेमें आये। उन्होंने भी मुझे देखकर प्रणाम किया। पाँचवें फाटकमें जानेपर स्फटिक मणिके बने हुए क्रीड़ा-सरोवर और मण्डप देखनेमें आये। छठेमें

इन्द्रके सामानिक देवोंके महल दिखाई पड़े। सातवेंमें घुसनेपर नाना प्रकारके आश्चर्यमय पदार्थोंसे भरी और देवकोटिसे युक्त धरणेन्द्रकी-राजसभा दिखाई दी। वहाँ बैठकर मैंने अनेक मनोहारिणी देवाङ्गनाओंके विवध हाव-भाव-युक्त नाच-गानका आनन्द उपभोग किया। वहाँ अपने पुण्यका फल दिखलानेके लिए धरणेन्द्रने मुझे नौ दिनों तक अपने पुत्रके समान मानते हुए रखा। उनकी देवियोंने भी तरह-तरहसे मेरी खातिरदारी की और खूब दिव्य पदार्थ खानेको दिये। उस भोजनका मज़ा मैं इस मुँहसे नहीं बतला सकता। इस प्रकार धरणेन्द्रके पुण्योंका फल देखकर मेरे मनमें अधिकाधिक पुण्य करनेकी प्रवल अभिलाषा उत्पन्न हुई। उस समय मैंने धरणेन्द्रसे कहा कि अब आप मुझे घर पहुँचा दें, तो मैं भी वहाँ पहुँचकर नाना प्रकारके पुण्यानुष्ठान करूँगा। यह सुन धरणेन्द्रने दिव्य रत्नोंसे जड़ी और बहुतोंको दान देनेकी शक्ति रखने वाली अपनी अँगूठी उतारकर मुझे दी और कहा,—"हे राजन्! इस अँगूठीका प्रभाव सुनो। यह अँगूठी यदि पाँच मनुष्योंके खाने योग्य भोजनादि पदार्थोंपर रखदी जाये, तो इसके प्रभावसे उतनेहीमें पाँच सौ मनुष्य खा सकते हैं। उस अँगूठीका यह प्रभाव श्रवणकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और बड़े आदरके साथ वह अँगूठी अपने हाथमें ली। आज धरणेन्द्रने मुझे अपने दिव्य अश्वपर बैठाकर देवताओंके सहित यहाँ तक आकर मुझे घर पहुँचा दिया। परन्तु मन्त्री! तुम यह तो बतलाओ कि तुमने कैसे जाना कि मैं आज यहाँ आऊँगा?"

यह सुन मन्त्रीने मन्दिरके अधिष्ठायक देवताकी कही हुई बातें कह सुनायी। यह सुन प्रसन्न होकर राजाने कहा,—"मन्त्री! धरणेन्द्रने पुण्यके प्रभावसे प्राप्त हुई अपनी जो स्थिति और समृद्धि मुझे दिखलायी, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। सच है, देवलोकमें देवताओंको जो सुख प्राप्त होते हैं, उनका वर्णन मनुष्य एक जीभसे तो क्या करेगा, यदि उसे जिह्वाएँ मिल जायें और वह सौ वर्ष तक वर्णन करता रहे, तो भी पूरा न पड़े! इस लिये मन्त्री! मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ, कि आजसे तुम भी केवल पुण्यके ही काम किया करो।"

मन्त्रीने कहा,—"हे राजन्! न्यायी राजा तो नित्यही पुण्य अर्जन करते रहते हैं। कहा है, कि न्याय, दर्शन, धर्म, तीर्थ-स्थान और प्रजाकी सुख-सम्पत्ति जिसके द्वारा वृद्धि पाती है, उस राजाकी सदा जय होती है। प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाको प्रजाके किये हुए धर्म और पुण्यका छठा भाग मिलता है और जो रक्षा नहीं करता, उसे प्रजाके पापोंमेंसे हिस्सा लेना पड़ता है।"

इसके बाद राजा जिन-मन्दिर आदि धर्म-क्षेत्रोंमें बहुत धन व्यय करने लगे। कहा जाता है, कि जिनमन्दिरमें, जिनबिम्बमें, पुस्तक लिखवानेमें, और चतुर्विध संघकी भक्तिमें जो धन लगाता है, वही इस संसारमें सच्चा पुण्यात्मा है। इसके सिवा वे धरणेन्द्रकी दी हुई अँगूठीके प्रभावसे हर महीने पाक्षिक पारणाके दिन स्वामी वात्सल्य भी करने लगे। इस प्रकार उन्होंने बहुत वर्षोंतक धर्म-कार्योंका अनुष्ठान किया।

एक दिन वे गुरुकी वन्दना करनेके लिये पारणाके दिन उपाश्रयमें आये। वहाँ जिनधर्मसे वासित देहवाले, श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओंको वहन करनेवाले, श्रावकके इक्कीस गुणोंसे विभूषित, बारहों व्रत धारण करने वाले एक श्रावकको उन्होंने गुरुकी चरण-वन्दना करते देखा। ऐसे गुणवान श्रावकको देखकर राजाने उसे प्रणाम किया और अपने घर भोजन करनेके लिये बुलाया। उसने भी राजाका विशेष आग्रह देखकर उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। इसके बाद गुरु महाराजने राजासे कहा,—"हे राजन्! आज इस श्राद्धवर्यका अट्ठम—तीन उपवासका पारणा है। इस लिये इसे सबसे पहले भोजन कराना।" राजाने स्वीकार कर लिया।

इसके बाद वह जिन पूजा आदि नित्यके काम पूरे करनेके पश्चात् राजाके घर भोजन करनेके लिये आया। राजाने उसका बड़े आदरसे स्वागत किया और उसे सुन्दर आसनपर बैठाकर उसके सामने सोनेकी थालीमें नाना प्रकारके दिव्य पक्वान्न परोसवाये। उसने पच्चक्खाण पार कर भोजन करना शुरू किया। इतनेमें राजाके द्वारा निमन्त्रित पाँच सौ और सेठ-साहूकार भोजन करनेके लिये आये। इसी समय एक विचित्र घटना हुई। उस श्रावकने ज्योंही पारणा समाप्त किया, त्योंही धरणेन्द्रकी दी हुई महा प्रभाववाली अँगूठी भोजनकी थालीसे उड़कर राजाकी उँगलीमें आपसे आप चली आयी। यह विचित्र हाल देख राजाने सोचा,—"आज यह कैसा विचित्र मामला है!

क्या अधिष्ठायक देवता कुपित हो गये? अथवा मुझे कोई अनास्थादोष लग गया? या मेरा पुण्यक्षय हो गया? आज देवका कथन असत्य क्यों कर हुआ? अब मैं अपना बड़प्पन कैसे बनाये रह सकूँगा? इन आये हुए पाँच सौ सेठ-साहूकारों को कैसे खिलाऊँगा?"

राजा यही सब सात-पाँच सोच रहे थे। इतनेमें आकशवाणी हुई कि—"राजन्! तुम मनमें तनिक भी चिन्ता न लाओ। देवताकी बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती; परन्तु बात यह है, कि इस एकही श्रावकको भोजन करने से तुम्हें पाँच सौ श्रावकोंको भोजन करानेका फल मिल गया है; क्योंकि यह अकेला ही सबसे पुण्यमें बढ़ा चढ़ा और कालान्तरमें मोक्षकी पदवी पानेवाला है।, इसीसे आज यह अँगूठी तुम्हें पाँच सौ श्रावकोंको भोजन कराने का पुण्य-फल देकर तुम्हारी उँगलीमें चली आयी है। तुम गुणी हो, इसी लिये तुमने गुणवान श्रावकको पहचान कर भोजन कराया है। ठीक है, गुणहीन गुणीका गुण नहीं जानता और गुणी गुणीको देखकर डाहसे जलता है। ऐसी अवस्थामें गुणी होकर दूसरेके गुणोंपर रीझनेवाले पुरुष संसार में विरले ही होते हैं।"

इतनेमें रसोइयोंने आकर राजासे कहा,—"भोजनके पात्रतो एकबारगी खाली हो रहे हैं। अब इन आये हुए ५०० श्रावकोंको कहाँसे खिलाया जाये?"

इतनेमें उसी आकाश-स्थित देवने कहा,—"हे राजन्!

इसकी कोई चिन्ता न करो। तुम ख़ुद जाकर देखो, मैंने तमाम पात्र भोजनके पदार्थों से भर दिये हैं। अब हजारों क्या लाखों मनुष्योंको भी खिलाओ, तो भी भण्डार ख़ाली न होगा।"

यह सुन राजा बड़े प्रसन्न हुए और ज्योंही आकर रसोईके पात्रोंको देखा, त्योंही वे सब भोजनके नाना पदार्थों से भरे नज़र आये। यह देख बड़े आनन्दसे राजाने उन आये हुए पाँच सौ श्रावकोंको भोजन कराया। सब लोग मौजसे खा-पी कर अपने-अपने घर चले गये। इसके बाद राजाने सारे नगरके लोगों को बुलाकर भोजन कराया। यह देख सब लोग आश्चर्यमें पड़कर सोचने लगे,—"रसोई बनायी भी नहीं गयी और राजाने सारे नगरको बुलाकर खिला दिया, तो क्या राजाको किसी देवताकी सहायता है? या इसे सुवर्ण-पुरुषकी प्राप्ति हुई है?"

इस प्रकार शङ्कामें पड़कर सब लोग एक दूसरे से पूछने लगे। बात राजाके भी कान में पड़ गयी। उन्होंने सब सुनकर कहा,—"भाई! यह सब धर्मका प्रभाव है।" यह कह उन्होंने सबको धरणेन्द्रकी अँगूठीका हाल कह सुनाया। इसी प्रकार राजा प्रियङ्कर निरन्तर नाना प्रकारके धर्म-कार्य करते हुए साधर्मीवात्सल्य करने लगे।

थोड़े दिन बाद अपने माता-पिताकी वृद्धावस्था देख प्रियंकर ने आप श्रीसंघके साथ शत्रुञ्जयतीर्थमें जाकर उनकी यात्रा करायी। कहा है, कि शत्रुञ्जय, सम्यक्त्व, सिद्धान्त, संघभक्ति, सन्तोष, सामायिक, और श्रद्धा, ये सातों दुर्लभ पदार्थ हैं।

शत्रुञ्जय तीर्थमें पहुँचकर उन्होंने साधर्मिवात्सल्य, संघ-पूजा, दीनोद्धार और दानशाला आदि अनेक प्रकारके पुण्यके कार्य किये। कहते हैं, कि विवाहमें, तीर्थमें, और मन्दिरकी प्रतिष्ठाके समय साधर्मिवात्सल्य अवश्यही करना चाहिये। विशेषतः सुपात्रको दान देना चाहिये।

एक दिन भाव-पूर्वक श्रीशत्रुञ्जयतीर्थपर श्रीऋषभदेवस्वामीकी पूजाकर पर्वतपरसे उतरते समय राजा प्रियङ्करके पिता सेठ पासदत्त नीचे आकर तलेटीपर आराधना-पूर्वक मृत्यु पाकर स्वर्गलाभ किया। राजाने उनकी यादगारके लिये शत्रुञ्जयके नीचे एक मन्दिर बनवा दिया। इसके बाद राजा स्थान-स्थानपर खूब उत्सव करते हुए संघसहित अपनी राजधानीमें चले आये। वहाँ आकर श्रीमद् युगादिदेवकी पादुकाको सोनेसे मढ़वाकर प्रतिदिन उसे पूजना आरम्भ किया।

धीरे-धीरे राजा प्रियङ्कर भी बूढ़े हुए। उन्होंने अपने शेष जीवनको केवलमात्र धर्मानुष्ठानमें लगानेके विचारसे अपने पुत्रको बुलाकर कहा,—"हे पुत्र देखो—बलवानपर कोप, प्रिय-तमपर अभिमान, संग्राममें भय; बन्धुओंसे विरोध, दुर्जनोंसे सर लता, सज्जनके सङ्ग शठता, धर्ममें संशय, गुरुजनका अपमान, लोकमें मिथ्या विवाद, ज्ञाति जनोंसे गर्व, दीनोंकी अवहेलना और नीच जनोंपर प्रीति कभी न करना।"

इस प्रकार अपने पुत्र जयङ्करको शिक्षा देकर वे राज्यकार्य-को त्यागकर धर्म-साधनामें लीन हो गये। उस दिनसे वे

अष्टमी और चौदसको पौषध करते और सुपात्रोंको खूब दान देते थे। कहा भी है, कि अभयदान, सुपात्रदान, अनुकम्पादान, उचित दान और कीर्त्तिदान इन पाँच प्रकारके दानोंमें प्रथमके दोनों मोक्ष तथा शेष तीनों भोग आदि देते हैं।

इस प्रकारके धर्मकार्य करते हुए अन्त समयमें आराधना-पूर्वक अनशन कर मृत्युको प्राप्त होकर राजा प्रियङ्कर सौधर्म-लोकमें जाकर देव हुए। वहाँसे आकर महाविदेहक्षेत्रमें मनुष्यके घर जन्म ग्रहणकर, चारित्र ग्रहणकर निरतिचारताका पालन करते हुए वे मोक्ष लाभ करेंगे।

इस तरह जो लोग उपसर्ग-हर स्तोत्रको रात-दिन याद करते रहते हैं, वे पद-पद पर राजा प्रियङ्करकी ही भाँति सुख-सम्पत्ति लाभ करते हैं।

जय-विजय ~~~~ के एक चित्रका नमूना

इस पुस्तकमें जय और विजय दोनों भाइयोंका चरित्र-चित्र
बड़ाही सरल और सरस भाषामें किया गया है। नवयुवकोंको
एक बार अवश्य पढ़ना चाहिये। मूल्य केवल ॥)
पता—पण्डित काशीनाथ जैन २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता